* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

(परिशिष्टाङ्क १)

याद रखो, एक दिन मृत्यु अवश्य होगी और कब होगी, इसका तुम्हें कुछ भी पता नहीं; अभी होश-हवास-दुरुस्त बैठे हो, शायद अगले ही मिनट तुम्हारी मृत्युका काल हो। उस समय तुम्हारे सारे काम ज्यों-के-त्यों धरे रह जायँगे। अभी कामसे तुम्हें पलभरको फुरसत नहीं मिलती, उस समय अपने आप ही सदाके लिये फुरसत मिल जायगी। अभी तुम शरीरके आरामके लिये बड़े सुन्दर महलोंमें मुलायम गद्दोंपर सोते-बैठते हो, उस समय निर्जन वनमें, सियार, कुत्ते और गीधोंसे घिरे हुए डरावने मरघटमें खुली जमीनपर तुम्हारा यह सोने-सा शरीर जलकर खाक हो जायगा। सारे अरमान मन-के-मनमें रह जायँगे, सारी शेखी चूर हो जायगी, सारी हेकड़ी काफूर हो जायगी, तुम्हारी मदभरी, गर्वभरी और रिसभरी आँखें सदाके लिये मुँद जायँगी।

× × ×

कैसे निश्चिन्त-से होकर भोगोंमें भटक रहे हो ? चेतो, शीघ्र चेतो, फिर पछतानेसे कुछ भी नहीं होगा; इस शरीरसे छूटकर जब तुम परलोकमें जाओगे और वहाँ तुम्हारे यहाँके कमाये हुए कर्मोंका भीषण फल सामने आयेगा, तब काँप उठोगे। यहाँके मौज-मजोंमें जिस सुखका अनुभव करते हो, वहाँ उस एक-एक मौजके बदलेमें जो भयानक दण्ड मिलेगा, उसे सुनकर मूर्च्छित होने लगोगे। परंतु बाध्य होकर मौजका बदला भोगना ही पड़ेगा। इससे अभी चेत जाओ। शरीर, मन, वचनसे किसी जीवका अहित न करो, किसीके जीको मत दुखाओ, सबका भला चाहो, भला करो, अपना अहित करके भी दूसरोंका हित करो, निश्चय रखो, तुम्हारा अहित कभी नहीं होगा। धोखेसे अभी तुम्हें दीखनेवाला अपना अहित परम हितके रूपमें परिणत हो जायगा। सबको परमात्माका स्वरूप समझकर सबकी अहैतुकी सेवा करो, परम कृपालु परमात्माका मन, वाणी और शरीरसे भजन करो, मनसे उनका ध्यान करो, वाणीसे उनका गुणगान करो और शरीरसे—सर्वत्र सबमें उन्हें विराजित देखकर सबकी आदर, प्रेम और उछाहके साथ सेवा करो।

× × ×

विषयोंसे मनको हटाकर भगवान्में लगाते रहो, विषयोंको विष समझो और भगवान्को दिव्य अमृत। भगवान्के लिये भगवत्पूजाके भावसे विषयोंका ग्रहण करना दूषित नहीं है, परंतु कभी भोग-बुद्धिसे विषयोंको न चाहो, न भोगो, न उनमें प्रीति करो, श्रीभगवान्को प्राप्त करनेकी जितनी साधनाएँ हैं, सबमें वैराग्य और भजन प्रधान है। जिसके हृदयमें वैराग्य है, वह बड़े-से-बड़ा त्याग सहज ही कर सकता है। त्यागसे सारे सद्गुण आप-ही-आप आ जाते हैं। परंतु वैराग्यके साथ भजनकी आवश्यकता है। संसारके भोगोंसे हटाये हुए मनको साथ-ही-साथ भगवान्में लगानेका भी प्रयत्न करना चाहिये।

× × ×

जीवन बहुत थोड़ा है, यदि तुम्हारा यह विश्वास हो गया है (और नहीं हुआ है तो महात्मा और संतोंकी वाणी तथा उनकी जीवनीका अध्ययन करके करना चाहिये) कि भगवत्प्राप्ति ही इस मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है तो आजसे—अभीसे ही उसकी प्राप्तिके लिये प्रणबद्ध होकर दृढ़ताके साथ लग जाना चाहिये। संसारका कोई भी प्रलोभन तुम्हारे मार्गमें बाधा न दे सके, ऐसी शक्ति प्राप्त करनेके लिये सर्वशक्तिमान् परमात्मासे प्रार्थना करनी चाहिये। याद रखो—तुम उसी सर्वशक्तिमान्के सनातन अंश हो, तुममें वह शक्ति है, उसे भूले हुए हो, भगवत्कृपासे—प्रार्थनाके बलसे तुम उस शक्तिको जान जाओगे और जानते ही तुम उस शक्तिवाले बन जाओगे। उस शक्तिकी जागृतिकी पहली कसौटी है विषयोंपर अनास्था और सर्वशक्तिमान् परमात्मापर अटल विश्वास। इस स्थितिके प्राप्त होनेपर तुम्हें कोई भी प्रलोभन नहीं रोक सकेगा। तुम विश्वविजयी होकर विश्वात्माको प्राप्त करोगे। —**'शिव'**

शीघ्र भगवत्प्राप्ति कैसे हो ?

[गीताभवन-स्वर्गाश्रममें दिये गये प्रवचनके आधारपर]

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक भाईने मुझसे पूछा कि भगवान्‌की प्राप्ति एक क्षणमें कैसे हो ? इसका यदि कोई उपाय हो तो बतलाइये। मैंने कहा—आप लोगोंको अपने पूरे जीवनमें यदि भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय तो उससे मैं अपनेको धन्य समझता हूँ और जिनको भगवान् मिल जायँ वह तो धन्य है ही। क्योंकि जिसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय तो यह समझना चाहिये कि उसे ईश्वरकी कृपासे सब कुछ मिल गया। भगवान्‌की प्राप्ति तो उसे होती है जो पात्र होता है। परंतु हमलोग उस प्रकारके पात्र हैं नहीं। परमात्माकी प्राप्ति करनी बड़ी अच्छी बात है। अच्छे विषयको जाननेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये।

'परमात्मा है' यदि यह विश्वास दृढ़ हो जाय तो परमात्मा उससे छिप नहीं सकते। किसी भी वस्तुका ज्ञान एक क्षणमें हो जाता है और जब ज्ञान हो जाता है, तब अज्ञानका नाश हो ही जाता है। भगवान्‌की अप्राप्तिमें अज्ञान ही कारण है, इसीलिये इतना विलम्ब हो रहा है। इस विषयमें एक कथा आती है—राजा जनक बहुत-से हुए हैं, उनमेंसे एक जनककी कथा इस प्रकार है। वह साधु ब्राह्मणोंको बुलाया करते, उनकी सेवा तथा सत्कार करते, उन्हें भोजन कराते और कहते कि 'आप यदि ज्ञानी-महात्मा हैं तो मुझे उपदेश कीजिये, परंतु ऐसा उपदेश दीजिये कि जिससे जितनी देरमें घोड़ेके एक पाँवड़ेमें मैं अपना पाँव रखूँ और दूसरे पाँवड़ेपर पाँव रखनेतक मुझे ज्ञान हो जाय।' उन्हें ज्ञान देनेके लिये बहुत-से बड़े-बड़े ज्ञानी महात्मा आते, परंतु ज्ञान नहीं दे पाते, फलस्वरूप राजा उन्हें बंदी बना लिया करते। ऐसे सैकड़ों बंदी बना लिये गये।

एक मुनि थे कहोड़, वे भी राजाको ज्ञान देने गये और ज्ञान न दे सके तो उन्हें भी बंदी बनना पड़ा। कहोड़का एक पुत्र था अष्टावक्र। उसका अष्टावक्र नाम पड़नेकी कथामें यह बताया गया है कि जब वह माताके गर्भमें था तभी उसको चारों वेदोंका शुद्ध ज्ञान था। एक दिन उसके पिता कहोड़ मुनि वेदका पाठ कर रहे थे। पाठमें अशुद्धियाँ आ रही थीं। माताके गर्भस्थ शिशुने माताके मुखसे बार-बार कहा कि आपका यह पाठ अशुद्ध है, यह पाठ अशुद्ध है। कहोड़को क्रोध आ गया, बोले कि अरे, गर्भमें पड़ा हुआ ही यह मुझको उपदेश दे रहा है, निकलेगा तो न मालूम हमारी क्या फजीहत करेगा; क्रोधाविष्ट थे ही, उन्होंने गर्भके ऊपर लात मारी। कच्चा गर्भ था, उसके हाथ-पैर आदि सब टेढ़े हो गये—हाथ टेढ़े, पैर टेढ़े, मुँह टेढ़ा, सब टेढ़े। एक प्रकारसे वह निराले ढंगका ही जनमा। उसके अङ्ग आठ जगहसे टेढ़े थे। इस कारण उसका नाम अष्टावक्र हुआ।

अष्टावक्रके पिता कहोड़ जिस समय राजा जनकको ज्ञान न दे सकनेके कारण जनकके यहाँ बंदी बने थे, उस समयमें अष्टावक्रकी अवस्थाका ही उद्दालक मुनिका पुत्र उसका मामा था, जिसका नाम था श्वेतकेतु। मामा-भांजा दोनों साथ-साथ खेलते। जैसे श्वेतकेतु अपनी माताको माता और पिताको पिता कहा करता, उसी प्रकार अष्टावक्र भी अपने नानाको पिता और नानीको माता कहा करते, कारण कि मामा जैसा कहता, वह भी वैसा ही कहता। बच्चोंमें इस प्रकारसे देखा-देखीकी आदत पड़ ही जाती है। वे दोनों आपसमें नित्य खेला करते। अपने राजपूतानेमें एक खेल है, गेंदसे राज्य गिरानेका। वे दोनों ऐसा ही खेल खेल रहे थे। अष्टावक्रने गेंद मारा और गेंद लक्ष्यपर गिर गया, विजयी हो गया, उसने कहा मेरी जीत हो गयी। उसके मामाको क्रोध आ गया, बोला कि तू तो यहाँ विजयके आनन्दमें मग्न है, पर तेरा बाप बंदी बनकर जेलमें है। यह बात उसके लग गयी और माँके पास आकर कहा कि 'माँ! मेरे पिता कौन हैं ? वह बोली—ये हैं ना। उसने कहा—ना, ये तो तेरे पिता हैं, मेरे पिता कहाँ हैं ?' माँ रोने लगी और बोली—'बेटा! तू तो ऐसी घड़ीमें पैदा हुआ कि तेरे जननेके बाद ही तेरे पिता राजा जनकके यहाँ कैदमें पड़ गये।' यह सुनकर उसने कहा—'माँ! मैं उस जनकके पास जाऊँगा और उसको परास्त करूँगा।' माँने बहुत मना किया, परंतु उस बालकको धुन चढ़ गयी। जोश आ गया और साथमें जो उसका मामा श्वेतकेतु था, वह भी उसके साथ गया। जब वे दोनों राजा जनकके यहाँ दरबारमें प्रवेश करने लगे तो ड्योढ़ीदारने रोका और कहा कि तुम सब कहाँ जाते हो ? वे

बोले कि हम राज्यसभामें जाते हैं। ड्योढ़ीदारोंने बतलाया कि यहाँ विद्वानोंकी—पण्डितोंकी सभा है, बालकोंकी नहीं। वे बोले—क्या अवस्थामें जो बालक है वह वहाँ नहीं जा सकता या ज्ञान और बुद्धिमें जो बालक है वह वहाँ नहीं जा सकता ? यदि अवस्थामें बालक वहाँ नहीं जा सकता तो हम नहीं जा सकते और यदि मूर्ख बालक नहीं जा सकता तो हम सब जा सकते हैं, हमारा अधिकार है। तुम हमसे शास्त्रार्थ करो, यदि मैं शास्त्रार्थमें तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दे दूँ तो हमें जाने देना। उन्होंने देखा कि ये वास्तवमें अवस्थामें बालक तो हैं, पर वैसे ये पण्डितोंके भी दाँत खट्टे करनेवाले हैं। ड्योढ़ीदारने उनको छोड़ दिया और सभामें जाकर दोनों खड़े हो गये। अष्टावक्रको देखकर लोग हँसने लगे। लोगोंको हँसते देख अष्टावक्र भी हँसने लगा। राजाने पूछा—'तुम क्यों हँस रहे हो।' अष्टावक्रने कहा कि 'तुम सब क्यों हँसते हो ?' सभासद् बोले कि 'हम तुम्हारा शरीर देखकर हँस रहे हैं।' वह बोला—'मैं इसलिये हँस रहा हूँ कि मैंने समझा था कि यहाँ पण्डितोंकी सभा है, परंतु यहाँ तो सब चमार-ही-चमार बैठे हैं। यदि यह बात मुझको पहले मालूम होती कि यहाँ चमारोंकी सभा है तो मैं नहीं आता। मैं तो पण्डितोंकी सभा समझकर यहाँ आ गया। पण्डित जो होते हैं, वे गुण और विद्या देखते हैं तथा जो चमार होते हैं वे हड्डी या चमड़ेकी परीक्षा करते हैं। यहाँके पण्डित हड्डी और चामसे बने मेरे शरीरको देखकर हँस रहे हैं, यह देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है।' यह सुनकर सब चुप हो गये। अष्टावक्रने फिर कहा कि 'मैंने सुना है कि आपके यहाँ ऐसी पद्धति है कि यदि कोई पण्डित यहाँ आकर ज्ञानका उपदेश करे और अपने ज्ञानसे संतुष्ट कर दे तो आप उसको संतुष्ट करते हैं और जो संतुष्ट नहीं कर सकता, उसको आप बंदी बना लेते हैं। उपदेश इतनी जल्दी करना पड़ता है कि घोड़ेके एक पाँवड़ेमें एक पाँव रखते ही दूसरा पाँव ज्यों ही दूसरेमें रखे इतने समयमें ही जो अपने ज्ञानसे संतुष्ट कर दे वही ज्ञानी माना जाता है।' राजा जनकने कहा—'हाँ, यह बात सही है, यही नियम है।' वे बोले कि 'मैं तुझे ज्ञान देने आया हूँ।' राजाने कहा—'बहुत ठीक है। परंतु आप यह बात समझ लीजिये कि घोड़ेके एक पाँवड़ेमें एक पाँव रखते ही तत्काल दूसरेमें रखनेतकके अंदरमें ही ज्ञान देना पड़ता है।' अष्टावक्र बोले—'इतनी देरमें तो मैं तीन बार ज्ञान दे सकता हूँ।' राजा बोले—'बहुत ठीक है।' घोड़ा मँगाया गया। अष्टावक्र सामने खड़े हुए, राजा घोड़ेके एक पाँवड़ेमें एक पाँव रखकर दूसरा ज्यों ही दूसरेपर रखना चाहते थे, त्यों ही अष्टावक्रने कहा—'मन मुट्ठीमें पकड़ो।' राजा बोले—'अरे भई ! मन मुट्ठीमें कैसे पकड़ा जायगा। मन ऐसी वस्तु नहीं है कि उसको मुट्ठीमें पकड़ लें। आप मन मुट्ठीमें पकड़नेका तात्पर्य बतलाइये।' अष्टावक्र बोले—'तात्पर्य यह है कि जबतक मैं दूसरी आज्ञा न दूँ, तबतक तुम्हारा मन तुम्हारी मुट्ठीमें ही रहे। अपनी मुट्ठीमें तुम ऐसा ध्यान लगाओ कि मन एकदम मुट्ठीमें ही रहे, इधर-उधर न जाय।' राजाने कहा—'यह होना तो कठिन है।' अष्टावक्र बोले—'इतने समयमें ज्ञान होना भी कठिन है। फिर बोले कि उपदेश पात्रको दिया जाता है, यदि तुम उपदेश प्राप्त करनेके पात्र हो तो इतने लम्बे समयकी क्या आवश्यकता है, अतः तुम पात्र तो हो नहीं और बंदी बनाते हो ब्राह्मणोंको, ऋषियोंको। तुम्हारे यहाँ तो अभी तैयारी ही नहीं है, कहते हो कि मुझे ज्ञान दो। कोई हाथमें चलनी लेकर आवे और कहे कि इसमें दूध डाल दो, तो चलनीमें तो दूध ठहरेगा ही नहीं, वह निकल जायगा। दूध ठहरनेके लिये तो पात्र होना चाहिये, दूध तो पात्रमें ठहरता है। तुम पात्र तो हो नहीं, उलटे दोष देते हो ब्राह्मणोंको। यह तुम्हारा अन्याय है।' राजाने कहा—'तो क्या करना चाहिये ?' अष्टावक्रने कहा—'पहले तुम पात्र बनो, फिर पात्र बननेके बाद प्रश्न करो। तब यदि हम तुम्हें इतने समयमें ज्ञान नहीं दे सकेंगे तो तुम मुझे बंदी बना लेना।' राजाने सोचा, बात तो ठीक है। बोले—'महाराज ! आप ही मुझे पात्र बनाइये।' अष्टावक्र बोले—'पात्र बननेमें तो समय लगेगा, पात्र बननेके बाद देरीका काम नहीं है।' राजाने कहा—'महाराज ! आपकी क्या आज्ञा है।' वे बोले—'प्रथम तो तुमने जिन निरपराधी ब्राह्मणोंको कैद कर रखा है, उनको छोड़ दो। फिर पात्र बननेका प्रयत्न करो। तब तुम्हें ज्ञान बतलायेंगे। एक क्षणका काम है, मिनटका काम है।' राजाने वैसा ही किया जैसा अष्टावक्रजीने कहा। अष्टावक्रने राजा जनकको जिस ज्ञानका उपदेश दिया, उसका नाम है—'अष्टावक्र-गीता'। इसमें यह बतलाया गया है कि यदि हम भगवत्प्राप्तिके पात्र बन जायँ तो

परमात्माकी प्राप्तिमें कोई विलम्ब नहीं है। जैसे बिजली ठीक हो जाय फिर तो स्विच दबानेके साथ ही बल्ब जल जायगा, एक मिनटका भी विलम्ब नहीं होगा। जो विलम्ब है वह बिजलीके ठीक होनेमें ही है, अपनी तैयारी करो। तैयारी होनेके बादमें ज्ञान तो एक क्षणमात्रमें हो सकता है। उसमें विलम्ब नहीं हो सकता। यह बात तो मैंने आपलोगोंको समझानेके लिये एक कथाके रूपमें कही।

बात यह थी कि एक क्षणमें भगवान् कैसे मिलें। तो मैं कहता हूँ कि यदि हमलोग पात्र हो सकेंगे तो भगवान् मिल जायँगे। पात्र बननेकी चेष्टा करनी चाहिये। भगवत्प्राप्तिके पात्र बननेका उपाय है 'परमात्माको सब जगह देखना।' अगर हमारी सब जगह भगवद्बुद्धि हो जाय तो परमात्माकी प्राप्ति तुरंत हो सकती है। परंतु ऐसी बुद्धिवाला महात्मा संसारमें मिलना बहुत दुर्लभ है, क्योंकि अनेकों जन्म लेनेके बाद किसी ज्ञानी महात्मामें 'वासुदेवः सर्वम्' की बुद्धि होती है। भगवान् कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

इससे पहले यह समझना चाहिये कि संसारमें जो कुछ भी है वह सब भगवान्‌का है, तभी भगवत्प्राप्ति होगी। इस सिद्धान्तके अनुसार सर्वत्र भगवद्बुद्धि रखनेवाले कुत्तेमें भी भगवद्बुद्धि हो जाती है। यद्यपि कुत्तेमें भगवद्बुद्धि होनी कठिन है, क्योंकि वह एक तो स्वयं अपवित्र है और अपवित्र वस्तुका भक्षण करता है तथा उसमें अपवित्र वस्तु ही भरी हुई है, तथापि वह परमात्मा है, उसके लिये भी हमारी भगवद्बुद्धि होनी चाहिये, किंतु जो साक्षात् परमात्मा है और जो भगवत्प्राप्त पुरुष है तथा जो जिज्ञासु है—परमात्माकी प्राप्तिके लिये साधनहेतु तत्पर है—उनमें भी आप उनके छिद्र देखते रहते हैं, उनमें दोष-बुद्धि रखते हैं, तो आपका इतनी जल्दी कल्याण कैसे होगा ? भगवान् तो कहते हैं कि सबमें भगवद्बुद्धि करो, पर आप ऐसा न भगवान्‌में करते हैं और न महात्माओंमें तथा न जिज्ञासुओंमें। भगवद्बुद्धि तो सबमें करनी चाहिये। यदि ऐसा न हो सके तो इनमें तो अवश्य करनी ही चाहिये—जो साक्षात् भगवान् हैं उनमें और महात्मा पुरुषमें तथा उच्चकोटिके साधक जो हैं, उनमें। उन लोगोंमें भी आपलोगोंकी जो बुद्धि है वह उच्चकोटिकी नहीं है। भगवद्बुद्धि नहीं है। उनके गुणोंकी ओर भी आप ख्याल नहीं करते। दिनभर उनके अवगुणोंकी ही चर्चा करते रहते हैं। भला बतलाओ तो भगवान्‌की प्राप्ति कैसे होगी। यह बड़ी मुश्किलकी बात है।

हाँ, तो मैंने जिस साधकसे यह बात कही कि अमुक मनुष्य कहता है कि हमको भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हुई और हमलोग भी ऐसा मानते हैं कि नहीं हुई। इनमें कुछ अवगुण हैं। इनको कभी-कभी झुँझलाहट आ जाती है, जिससे इनमें क्रोधका, लोभका कुछ दोष घट जाता है तो हम टीका-टिप्पणी करते हैं। मान लो, जैसे मैं कहूँ कि आये हुए आदमीकी खातिर करनेवाले ये जो सज्जन हैं उनमें हम दोष-बुद्धि करते हैं, ऐसी स्थितिमें यदि किसी भी भाईमें अवगुण हैं तो हमें उसके अवगुणोंकी तरफ नहीं देखना चाहिये, उसके गुणोंकी तरफ देखना चाहिये। जब ऐसा हो सकेगा तभी हम लाभ उठा सकेंगे। हम यदि अवगुण ही देखते रह जायँगे तो हमारे हृदयमें अवगुण-ही-अवगुण इकट्ठे हो जायँगे। हमारे घरमें मैला इकट्ठा हो जायगा। हमारे घर पहलेसे ही बहुत मैला इकट्ठा हो रहा है और गाँवका मैला और इकट्ठा कर लेंगे तो उद्धार होना तो दूर रहा, पतनकी तरफ ही जायँगे। एक व्यक्तिने मुझसे शिकायत की कि ये जो कमरा देते हैं इनसे अमुकको दिक्कत है। बात उनकी एकदम सही है, कोई फर्क नहीं। मैंने कहा—बात ऐसी है कि यदि यह काम तेरे जिम्मे लगा दिया जाय तो मुझे निश्चय है कि इनसे अधिक दोष तुममें आयेंगे और यदि विश्वास न हो तो आजसे यह काम अपने जिम्मे ले लो। उनसे बढ़िया करके दिखलाओ। दोष निकालना तो आसान बात है, क्योंकि क्रियामें दोष तो हम श्रीराम और श्रीकृष्णमें भी कर सकते हैं। वास्तवमें वे लोग मेरी सम्मतिके अनुकूल लोगोंको जगह देते हैं, व्यवहार कहीं बिगड़ जाता है तो वे भी नहीं चाहते और मैं भी नहीं चाहता हूँ और भगवान् तो चाहेगा ही क्यों ? पर कहीं-कहीं ऐसी बात घट जाती है। आनेवाला सोचता है कि सेठजी तो भले आदमी हैं, परंतु यह ही चोर है। ऐसी स्थितिमें कठिनता आ जाती है और दूसरा कोई उसके स्थानमें हो तो उसके लिये भी कठिनाई होगी। मेरे मनमें तो यह भाव रहता है कि भगवान् जैसे राजी रहें, वैसे

मैं सबको राजी रखूँ और उनका यह भाव रहता है कि जिससे मैं राजी रहूँ वैसा करूँ। तो उनमें जो दोष लगाये उसे मैं समझूँ कि मेरे ऊपर ही लग गया। वह चाहे मेरे ऊपर दोष लगाये और चाहे भगवान्‌पर लगाये। मेरा तो यह कहना है कि दोष-बुद्धि किसीमें भी नहीं करनी चाहिये और गुण-बुद्धि करनी चाहिये। यदि किसीको समझाना हो तो उसके गुणकी अधिक प्रशंसा करें और अवगुण कम बतायें। पहले उसके गुण बतलायें कि आप कैसी सेवा कर रहे हैं, सत्संग छोड़कर आप काम करते हैं। आप दिन भर खट रहे हैं। जितने भी आपको गुण दीखें सब कह डालो। फिर तो वह स्वयं ही पूछेगा कि भइया क्या कह रहे हो हमारेमें कोई त्रुटि हो तो उसे बतलाओ। तब कहे—त्रुटिको मैं क्या समझूँ, पर आप पूछ रहे हैं तो मैं बताता हूँ। आपने जो अमुक काम किया, इसमें मुझे यह गलती मालूम हुई। यदि ऐसा न करके इसे इस प्रकार करते तो और भी सुगम होता। तो वे भी इस बातको स्वीकार करते कि ठीक है, यह बात उस समय मेरे हृदयमें नहीं आयी, आगेसे ऐसे ही करूँगा और वह शिक्षा भी उसके लगेगी, सोचेगा कि यह मेरा अपना है। तो बात यह है कि यदि किसीको शिक्षा देनी हो तो पहले उसके गुण कहने चाहिये, फिर यदि वह पूछे तो उसकी कमियाँ-त्रुटियाँ जो उसमें दीखें नम्रतापूर्वक प्रेमसे कहनी चाहिये। ऐसा करनेसे उसपर असर भी होगा और उसका सुधार भी होगा। (क्रमशः)

सोद्देश्य मौन-धारण

(श्रीशिवानन्दजी)

आध्यात्मिक साधकको अपनी परिस्थिति एवं सामर्थ्यके अनुसार यदा-कदा अल्प अवधितक (कुछ घंटे अथवा पूरा एक दिन) एकान्तमें स्वाध्याय, चिन्तन, जप एवं ध्यानद्वारा शुद्ध चेतनाके संस्पर्श तथा आत्मिक ऊर्जाके जागरणके लिये मौन धारण करना चाहिये। सोद्देश्य मौन-धारण आन्तरिक शक्ति और शान्तिके विकासमें अत्यधिक सहायक होता है। मौनद्वारा भौतिक विषयोंकी वासना, तृष्णा, भय, चिन्ता, उद्वेग और उत्तेजनशीलताका शमन होनेसे शान्तचित्त रहनेका अभ्यास हो जाता है। मनुष्य निर्वैर होकर प्रेमकी अद्भुत महिमा एवं प्रभावको भी जान लेता है। शुद्ध चेतनाका संस्पर्श अथवा चेतनास्तरका ऊपर उठना ही मानवकी समस्त विपन्नताके निदानका तथा समस्त अभ्युदयका अमोघ उपाय है।

मौनके अन्तर्गत ध्यानकी साधनामें विशेष प्रगति होती है तथा कभी-कभी साधक ध्यानावस्थामें सुरदुर्लभ अनिर्वचनीय आनन्दकी अनुभूतिका सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। आन्तरिक विकास होनेपर अपनी अन्तर्निहित असीम क्षमता एवं अनन्त सम्भावनाओंका बोध होनेपर नये रास्ते स्वयं खुल जाते हैं, मनका भटकाव समाप्त हो जाता है, दिशा मिल जाती है, कष्टोंकी निवृत्ति हो जाती है तथा आनन्दकी प्रस्थापना हो जाती है। जीवनका लक्ष्य और उसकी प्राप्तिका मार्ग प्रशस्त एवं स्पष्ट होनेपर तदनुसार आचरण करना हमारा प्रथम कर्तव्य है।

मौन-धारण प्रारम्भमें तो कष्टदायी प्रतीत होता है, किंतु धैर्यपूर्वक अभ्यास होनेपर मनुष्यको अपने भीतर आनन्दका अक्षय भण्डार सरलतासे हाथ आ जाता है। मौनके सोद्देश्य होनेपर मन इतना सात्त्विक और प्रशान्त हो जाता है कि मनमें बोलनेकी अथवा निरर्थक कुछ करनेकी इच्छा ही नहीं रहती तथा वह धीरे-धीरे परमावस्थाकी ओर बढ़ने लगता है। आत्म-संयम, आत्म-नियन्त्रण, आत्मचिन्तन और आत्म-कल्याणके लिये सोद्देश्य मौन धारण करना उत्तम साधन है। मौनके अभ्याससे वाणीका संयम सीखकर मनुष्य योगके प्रथम द्वार 'वाङ्‌निरोध' पर पहुँच जाता है तथा अल्प एवं मधुर वाणीका महत्त्व जान लेता है। सोद्देश्य मौन-धारण व्यक्तित्व-विकासमें भी उपयोगी है।

श्रीश्रीनामामृतलहरी

(महात्मा श्रीसीतारामदास ॐकारनाथजी)

'जो प्राणी, वासुदेवसे अतिरिक्त परम मङ्गल कुछ नहीं है, वासुदेवकी अपेक्षा परम पवित्र और कुछ नहीं है तथा वासुदेवसे श्रेष्ठ देवता और कोई नहीं है'—ऐसी सुनिश्चित दृढ़ आस्था रखकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उन वासुदेवको प्रणाम करता रहता है, उसे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश—इन पाँचों क्लेशोंकी प्राप्ति नहीं होती। प्रणाम करनेमात्रसे पाँचों क्लेश दूर हो जाते हैं।'

न वासुदेवात् परमस्ति मङ्गलं
न वासुदेवात् परमस्ति पावनम्।
न वासुदेवात् परमस्ति दैवतं
तं वासुदेवं प्रणमन् न सीदति॥

(अनुस्मृति १०१)

भगवान्ने कहा है—'**नम इत्येव यो ब्रूयान्मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः**'—श्रद्धासम्पन्न मेरा जो भक्त '**नमः**' इस शब्दका उच्चारणमात्र करता है, हे नारद ! वह यदि चाण्डाल भी होता है तो भी उसे अक्षय लोककी प्राप्ति होती है। मुखसे '**नमः**' कहनेपर ही जब मनुष्यको अक्षय लोक मिल जाता है, तब प्रणाम करनेपर अविद्यादि क्लेशोंके दूर हो जानेमें क्या आश्चर्य है ? और—

येऽहर्निशं जगद्धातुर्वासुदेवस्य कीर्तनम्।
कुर्वन्ति तान् नरव्याघ्र न कलिर्बाधते क्वचित्॥

(विष्णुधर्मोत्तर)

'जो लोग दिन-रात जगत्के निर्माणकर्ता, रक्षणकर्ता, धारणकर्ता वासुदेवका नाम-कीर्तन करते हैं, हे नरश्रेष्ठ ! कलि उन लोगोंपर कोई उपद्रव नहीं कर सकता—कोई पीड़ा नहीं दे सकता।'

वासुदेवका नाम-कीर्तन समस्त कल्याणकारी कर्मोंका कल्याणकारक है, आयुवर्धक है और भोग या मोक्ष—जो जिसको चाहता है, उसको वही प्रदान करता है।

बहुतोंको यह भ्रम होता है कि 'भगवान् वासुदेवका आश्रय लेनेपर मनुष्य दरिद्र हो जाता है ?'

दरिद्र कौन होता है—जो भोग नहीं चाहता। जिन्होंने इस जन्ममें या पूर्वजन्ममें कभी भोगकी प्रार्थना की है, वे तो भोग पाते ही हैं। मनु, राजा पृथु, ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, मान्धाता, जनक, युधिष्ठिर—इनके समान भक्त कौन हैं ? ये भगवान्की सेवा करके राजा हो गये। लक्ष्मी जिनकी गृहिणी हैं, उनकी सेवा करके मनुष्य दरिद्र क्यों होगा ? हाँ, जो यह कहते हैं कि 'हमें कुछ नहीं चाहिये, हम तो केवल तुम्हींको चाहते हैं—तब भगवान् अगत्या उन्हें अपने आपको दे देते हैं। कल्पवृक्षसे जो जिस वस्तुको चाहता है, वह उसीको पाता है। जो गाछ चाहता है, वह गाछ पाकर इतना बड़ा धनवान् हो जाता है कि उसका माप करनेकी शक्ति किसीमें नहीं रह जाती, इसलिये लोग उसे निर्धन कहते हैं। हरि-हरि-हरि करता है—गाछके नीचे पड़ा है—खानेको नहीं पाता, पहननेको कपड़ा नहीं है—उसको लोग महा-धनवान् और राजा कैसे कहेंगे ?

हरि-हरि ! नहीं सुना है—साधुओंको लोग 'महाराज' कहते हैं ? मनुष्य धन चाहता है आनन्दके लिये, अर्थके द्वारा अनन्त दुःखमिश्रित खण्डानन्दका भोग प्राप्त होता है। और जो परमार्थ-लाभ करता है, वह असीम अपरिमित परमानन्द-सागरमें डूबा रहता है, उसके आनन्दको दूसरा क्या समझेगा ? वह जैसा मुक्त प्राणसे हँसता है, उस प्रकार हँसनेकी शक्ति वित्तनाशके भयसे सशङ्कित राजा-महाराजामें भी नहीं है।

भगवान्ने ही तो कहा है—

'यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।'

'जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसके धनको शनैः-शनैः हर लेता हूँ।' ठीक ही तो है। राजा बननेकी प्रार्थना करके, राजा बनकर जब उसकी ज्वालासे त्राहि-त्राहिकी पुकार मचाता है, तभी तो भगवान् अनुग्रह करके धन हरण करते हैं और जो ऐश्वर्यमदमें अन्धे हो जाते हैं, उनपर कृपा करनेके लिये धन छीन लेते हैं। लक्ष्मी जिनकी चरणसेविका है, उसके दास निर्धन नहीं हो सकते। कोई पार्थिव धन पाकर—भगवान्के उद्देश्यसे दान, यज्ञ, लोक-सेवा, परोपकारमें लगाते हैं। कोई अपार्थिव धनके अधिकारी होकर तप्त जीवसमूहको उस धनसे धनी बनाते हैं। जो जिस वस्तुको चाहता है, उसे वही देते हैं। कोई कहता है—

मुक्ति न दीजै मोहिं प्रभु ! कीजै कृपा उदार।
जनम जनम पद-कमल-रति, सेवाको अधिकार॥

—उसको भगवान् यही देते हैं और जो निर्वाण चाहते हैं, उनको नाम लेनेपर निर्वाण मिलता है, क्योंकि भगवान्ने कहा है—'नारायण-अच्युत-अनन्त-वासुदेव' मेरे इन सब नामोंका कीर्तन करनेसे **'याति मल्लयतां स हि'**—वह मुझमें निश्चय लयको प्राप्त होता है—महाकाशमें घटाकाशकी भाँति सदाके लिये सम्मिलित हो जाता है।

वासुदेवेति मनुज उच्चार्य भवभीतितः।
तन्मुक्तिपदमाप्नोति विष्णोरेव न संशयः॥

(अङ्गिरसपुराण)

'जो मनुष्य भवभयसे भीत होकर 'वासुदेव' इस नामका उच्चारण करता है, वह जन्म-मरणके बन्धनसे छूटकर विष्णुके परमपदको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।'

वासुदेवका अर्थ क्या है ?

वासु सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु।
स च देवः परं ब्रह्म वासुदेव इति स्मृतः।

(ब्र० वै० पुराण)

'जो सबका निवासस्थान है एवं विश्व-समूह जिसके रोममें स्थित है, वह ज्योतिर्मय परम ब्रह्म वासुदेव है।'

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते॥

(विष्णुपुराण १।२।१२)

'वह सर्वत्र है और सब उसीमें निवास करता है, इसलिये उसे वासुदेव कहा जाता है।'

भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत्।
धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः॥

'वह भूतोंके अंदर निवास करता है और समस्त भूत उसमें निवास करते हैं, वह जगत्‌का धारण-रक्षण और निर्माण करनेवाला है, विधानकर्ता है और निग्रह-अनुग्रहमें समर्थ प्रभु है, इससे वासुदेव है।'

सर्वभूताधिवासं च यद्भूतेषु वसत्यधि,
सर्वानुग्राहकत्वेन तदस्म्यहं वासुदेवः, तदस्म्यहं वासुदेवः॥

(ब्रह्मविन्दूपनिषद् २२)

'सब भूतोंका निवासस्थान, सब भूतोंका निवास और सबका अनुग्राहक होनेके कारण वह वासुदेव मैं हूँ, वह वासुदेव मैं हूँ।'

सब भूतोंमें जो निवास करता है और समस्त भूत जिसमें निवास करते हैं, वही वासुदेव है—यही बात सबने कही है हृदयकमलमें आत्मारूपसे वह है, यह तो समझमें आ गया, परंतु समस्त भूत उसमें किस प्रकार हैं ?

द्यौर्मूर्द्धानं यस्य विप्रा वदन्ति
खं वै नाभिं चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ।
दिशः श्रोत्रे यस्य पादौ क्षितिं च
ध्यातव्योऽसौ सर्वभूतान्तरात्मा॥

'द्युलोक जिसका मस्तक है, आकाश नाभि है, चन्द्र-सूर्य दोनों नेत्र हैं, दिशाएँ कान हैं, पृथ्वी चरण हैं—हम उसके चरणोंमें ही हैं। हमारे ऊपर-नीचे, बायें-दाहिने, सामने-पीछे वही है, अतएव हमलोग उसके भीतर ही हैं। और भी उसका एक नाम है 'ब्रह्माण्डोदर।' सावरण चतुर्दश भुवन उसके छोटेसे उदरमें स्थित है, अतः भूतगण उसीमें निवास करते हैं।' यह धारणा करना यदि बहुत कठिन है तो **'वसुदेवस्यापत्यं पुमान् इति वासुदेवः'** वसुदेवके पुत्र वासुदेव, जिसके मुखमें हँसी तथा हाथमें वंशी है, ऐसी धारणा करना तो सरल है ! अच्छा लगे तो उसीका चिन्तन करो, अथवा शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी नारायणका ध्यान करो।

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम्॥

(विष्णुसहस्रनाम)

'वासुदेवमें परम आसक्त, वासुदेव-आश्रयी मानव सब पापोंसे विशुद्धचित्त होकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त करता है।'

नवघनश्यामसुन्दर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी वासुदेव या पीतवसन, मयूर-पिच्छको मस्तकपर धारण किये वंशी बजाते हुए कृष्णचन्द्रका चिन्तन करते-करते नामोच्चारण करो। यह भी न कर सको तो, केवल बोलो—वासुदेव-वासुदेव- वासुदेव !

जो दिन आज है वह कल नहीं रहेगा, चेतना है तो जल्दी चेत जा, देख, मौत तेरी घातमें घूम रही है।—कबीर

भगवदनुराग

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

क्षणभङ्गुर मनुष्य-शरीरको शास्त्रकारोंने बहुत दुर्लभ बतलाया है, उनका कहना है कि इसी शरीरसे यथोचित उद्योग करनेपर जीवकी अनन्तकालकी सुख-कामना सर्वथा पूर्ण हो सकती है। भगवान्‌ने कृपा करके इस शरीरमें ऐसा विवेक दिया है, जिससे मनुष्य भले-बुरे और नित्य-अनित्यका विचार कर बुरे और अनित्यका त्याग तथा भले और नित्यका ग्रहण कर सकता है। विवेकके द्वारा वह अपनी अनादिकालकी कामनाको पहचानकर उसकी प्राप्तिके लिये चेष्टा कर सकता है और अन्तमें उसे पा सकता है। जो मनुष्य भगवान्‌के दिये हुए विवेकसे इस कार्यकी पूर्तिमें लगता है, वही मनुष्य कहलाने योग्य है। जो पशुओंकी भाँति केवल उदर-पूर्ति और भोग भोगनेमें ही लगा रहता है, उसको तो मनुष्याकार पशु ही समझना चाहिये। बात भी ठीक है। मनुष्यमें मनुष्योचित गुण होने ही चाहिये। जो रात-दिन जिस-किसी प्रकारसे पैसा कमाने और उससे शरीर सजाने तथा भोग-सामग्रियोंको जुटानेमें लगे रहते हैं, वे यथार्थ ही मनुष्यके कर्तव्यसे गिरे हुए हैं। जिस विवेकको भगवत्प्राप्तिके साधनमें लगाना चाहिये, उसी विवेकका प्रयोग यदि हाड़-मांसके शरीरको सजानेमें, फैशनमें, विलासिताका सामान इकट्ठा करनेमें और इन्द्रियोंको आरम्भमें सुखकर प्रतीत होनेवाली परंतु परिणाममें दुःखदायिनी भोग-सामग्रियोंके संग्रह करनेमें किया जाय तो इससे बढ़कर मूर्खता और क्या होगी? परंतु क्या कहा जाय, यहाँ तो आजकल चारों ओर यही हो रहा है। आज प्रायः सारा ही जगत् केवल भोग-सामग्रियोंके लिये ही जूझ रहा है। जिसके पास भोगके पदार्थ अधिक हों, वही बड़ा आदमी और बड़भागी माना जाता है, चाहे वह पदार्थ उसने कितने भी कुकर्मोंके द्वारा इकट्ठे किये हों और कर रहा हो। यही हालत राष्ट्रोंकी है।

फैशन तथा बाहरी दिखावेके भावने इतनी गहरी जड़ जमा ली है कि आज गृहत्यागी संन्यासियोंके गेरुआ वस्त्रोंमें, उनके दण्ड-कमण्डलुमें, उनकी चरणपादुकाओंमें, धर्माचार्योंके वेश-भूषा और रहन-सहनमें, सादगीका बाना धारण करनेवाले देशभक्तोंके खादीके कुर्ते, चद्दर और चप्पलोंमें और बनावटसे दूर रहनेके लिये निरन्तर वाणी और कलमसे उपदेश करनेवाले महानुभावोंकी वाणी और कलममें—सभीमें फैशन आ गया है। उनकी ऊपरकी सादगी दिलकी सादगीका सच्चा प्रतिबिम्ब नहीं है। किस प्रकार दूसरे हमें देखकर मुग्ध हों, कैसे कोई हमारी वाणी, कलम, पोशाक, चाल और चाहपर रीझे, हृदयको टटोलकर देखा जाय तो प्रायः अधिकांशके अंदर ऐसे ही भाव पाये जायँगे। यह सादगीमें छिपी विलासिता है। कर्मेन्द्रियोंको रोककर मनसे विषयोंकी चाह करनेको भगवान्‌ने मिथ्याचार बतलाया है। सच पूछा जाय तो आज जगत्‌में मिथ्याचारका प्रचार बढ़ रहा है। कपट बढ़ रहा है। भोगेच्छाका दमन नहीं, किंतु उसकी प्रबलता बढ़ रही है और उन्नतिके नामपर उसको बढ़ाया जा रहा है। सांसारिक भोगोंकी इच्छा जितनी ही अधिक बलवती होती है, जितना ही अधिक भोगपदार्थोंके संग्रहकी भावना बढ़ती है, उतना ही मनुष्य भगवान् और भगवद्भावोंसे दूर होता चला जाता है। हमारे आजके छात्रावास, आश्रम, विद्यालय और गुरुकुल-ऋषिकुलोंसे, प्राचीन त्यागमय संग्रहशून्य छात्रावास, ऋषियोंके आश्रम, विद्या-मन्दिर और गुरुकुल-ऋषिकुलोंका मिलान करके देखिये। आकाश-पातालका अन्तर पड़ गया है। त्यागका आदर्श भोगके आदर्शके रूपमें बदल गया है। जीवनका लक्ष्य भगवान् न रहकर जगत्‌के भोग-सुख-साम्राज्य, यथेच्छाचरणकी स्वतन्त्रता आदि रह गये हैं। आज मनुष्य कितना विवेकशून्य हो गया है, इसका पता मनीषियोंको इन सब बातोंपर विचार करनेसे अनायास ही लग सकता है।

यह स्थिति बड़ी ही भयावनी है। अभी पता नहीं लगता, परंतु जब इसका परिणाम सामने आयेगा, तब दुःखकी सीमा न रहेगी। उस परिणामके चित्रकी कल्पना आते ही हृदय काँप उठता है। पता नहीं, विवेकभ्रष्ट मनुष्य कब पुनः विवेकको प्राप्तकर भगवत्पथका पथिक होगा?

परंतु पूर्वपुण्य या साधु पुरुषोंके संगसे जिनके मनमें कुछ भी मानव-जीवनके उद्देश्य-सम्बन्धी विवेक जाग्रत् हैं, उन

लोगोंको तो सावधानीके साथ अपने जीवनका मार्ग स्थिर करके उसपर चलना आरम्भ कर ही देना चाहिये। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि चक्कीके पाटोंके बीच पड़े हुए दानोंमें जो दाने बीचकी कीलीके आसपास लगे रहते हैं, वे पिसनेसे बच जाते हैं। इस घोर कालमें भी—जो देखनेमें भ्रमसे प्रगतिका, उन्नतिका और अभ्युदयका-सा प्रतीत होता है—जो मनुष्य भगवान्‌की और धर्मकी परायणताको नहीं छोड़ेंगे, वे महान् बुरे परिणामसे अवश्य बच जायँगे।

सबसे पहले विवेकसे निर्णय करके जीवनका लक्ष्य—ध्येय स्थिर कर लेना चाहिये। वह ध्येय परमात्मा है, जबतक उसकी प्राप्ति नहीं होगी, तबतक जीवके दुःखोंका अन्त किसी प्रकार, किसी उपायसे भी नहीं हो सकता। तदनन्तर उस लक्ष्यके विरोधी सभी कार्योंसे मुँह मोड़ लक्ष्यके सम्मुख होकर चलना आरम्भ कर देना चाहिये। इसीका नाम वैराग्य और अभ्यास है। भगवद्विरोधी सांसारिक विषयोंमें—इस लोक और परलोकके सभी भोग-विषयोंमें अनुरागका सर्वथा त्याग और भगवत्‌के अनुकूल श्रवण, चिन्तन, सेवा, ध्यान आदि सद्‌वृत्तियों और कार्योंका ग्रहण करना चाहिये। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि मनुष्य-शरीर इन्द्रियोंके तृप्त करनेकी झूठी झाँकी दिखानेवाले भोगोंके लिये नहीं है, झूठी झाँकी इसीलिये कि भोगोंसे कभी तृप्ति हो ही नहीं सकती, ***'बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते।'*** यह शरीर है भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये, अतएव भगवत्प्राप्तिके मार्गमें—चाहे जितने कष्टोंका सामना करना पड़े, चाहे जैसी विपत्तियाँ आयें, इन्द्रियोंके समस्त सुखकर भोग नष्ट हो जायँ, उनका प्राप्त होना सर्वथा रुक जाय, सारे ऐश-आराम सपना हो जायँ, इन्द्रिया छटपटायें, जो कुछ भी हो, किसी बातकी भी परवा न करके आगे बढ़ते ही जाना चाहिये, सब कुछ खोकर भी उसे पानेकी चेष्टा करनी चाहिये। जो ममत्व-बुद्धिसे जगत्‌के इन सब पदार्थोंको बचानेकी चेष्टामें लगा रहता है, वह उस परमात्माको नहीं पा सकता, पर जो सबका मोह छोड़कर, मनसे सबका नाता तोड़कर विगतज्वर हो भगवत्प्रेमकी अग्निमें कूद पड़ता है, वह अपने सारे पाप-तापोंको उस धधकती हुई प्रेमाग्निमें भस्मकर परम अमृत—परमशान्तिको प्राप्त करता है।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि मनुष्य गृहस्थी छोड़ दे—कर्तव्य-कर्म छोड़ दे, यहाँ गृहस्थ या संन्यासीका सवाल नहीं है, प्रश्न है जगत्‌के त्यागका—जगत्‌के इस मायामय वर्तमान रूपके नष्ट कर देनेका—इस प्रपञ्चको जला देनेका। इसके स्थानमें भगवान्‌को बैठा दीजिये, जगत्‌की जगह श्रीहरिकी प्रतिष्ठा कीजिये, जगत्-पत्थरको खोकर हरि-हीरेको प्राप्त कीजिये और उसीकी इच्छासे, उसीकी सामग्रीसे और उसीके साधनसे उसके सब रूपोंमें उसीकी सेवा करते रहिये। फिर कुछ छोड़ने-ग्रहण करनेका सवाल ही नहीं रह जायगा।

यह भावुकता या कल्पना नहीं है, ऐसा किया जा सकता है—हो सकता है। जीवनका ध्येय निश्चित करके विरोधी भोग-पदार्थोंमें वैराग्य कीजिये, फिर आप ही जीवन हरिमय होने लगेगा। फिर हरि-प्रेमकी आगमें कूदनेमें भय नहीं होगा, प्रत्युत उत्साह होगा, जल्दी-से-जल्दी कूद पड़नेको मनमें तलमलाहट पैदा होगी और हम उसमें बिना आगा-पीछा सोचे कूद ही पड़ेंगे, क्योंकि वैराग्यके बादकी यही सीढ़ी है। वैराग्यके बाद भगवदनुराग ही रह जाता है। यह भगवदनुराग ही मनुष्यको भगवत्स्वरूपतक पहुँचानेका सर्वोत्तम साधन है। जिसके हृदयमें भगवदनुरागकी जितनी अधिक मात्रा होती है, वह बाह्य जगत्‌की निम्न-प्रकृतिसे ऊँचा उठकर उतना ही अधिक अन्तर्जगत्—अध्यात्म-जगत्‌की उच्च भूमिकामें प्रवेश करता है। तब उसे पता लगता है कि इस स्थितिके सामने बहिर्जगत्‌की ऊँची-से-ऊँची स्थिति भी तुच्छ और नगण्य है, परंतु यहीं उसकी दिव्य धाम-यात्राका मार्ग समाप्त नहीं होता, इससे अभी बहुत ही ऊँचे उठना है और क्रमशः ज्यों-ज्यों ऊँची भूमिकामें प्रवेश होगा, त्यों-ही-त्यों क्रमशः नीचेकी भूमिकाओंका आनन्द, सुख, ऐश्वर्य, शक्ति, मति, ज्ञान आदि सब निम्न श्रेणीके और तुच्छ प्रतीत होते रहेंगे, आखिरी मंजिल तै करनेपर परमात्माके स्वप्रकाशित नित्य विशुद्ध राज्यमें—उस दिव्य धाममें प्रवेश होगा, जहाँका वर्णन कोई कर नहीं सकता, जो इस जगत्‌की किसी भी वस्तुसे तुलना करके नहीं बतलाया जा सकता। यहाँके चन्द्र-सूर्य जहाँ प्रवेश नहीं कर पाते। इसीका इशारा भगवान्‌के इन वाक्योंमें है—

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता ८। २०-२१)

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता १५।६)

(प्रलयके समय जिस अव्यक्तमें समस्त जगत् लय होता है और पुनः सृष्टि-कालमें जिस अव्यक्तसे उत्पन्न हो जाता है) उस अव्यक्तसे भी अति परे एक दूसरी सनातन सत्, चित्, आनन्दमय अव्यक्त सत्ता है, जो सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होती, इसीसे उसे अव्यक्त और अक्षर कहते हैं, उसीको परम गति कहते हैं, जिसको पाकर कोई लौटते नहीं, (उस स्थितिसे कभी नीचे नहीं उतरते) वह मेरा परम धाम है। उस स्वप्रकाशित परम सत्ताको न सूर्य प्रकाशित कर सकता है और न चन्द्रमा और न अग्नि ही। उस परम पदको पाकर कोई वापस नहीं लौटते, वही मेरा परम धाम है।

श्रुति भी इशारा करती है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

(कठ० २।१५)

उस स्वप्रकाश आनन्दस्वरूप सत्ताको सूर्य, चन्द्र, तारा और विद्युत्समूह प्रकाशित नहीं कर सकते। प्रत्युत उसीके प्रकाशसे सूर्य, चन्द्र प्रभृति प्रकाश पाते हैं; क्योंकि उसीके तेजसे यह समस्त जगत् प्रकाशित है।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥

(गीता ८।२८)

योगी (भगवदनुरागी) पुरुष इस रहस्यको जानकर वेद, यज्ञ, तप और दान आदिसे जो पुण्य फल होता है, (इनके फलसे जिन उच्च भूमिकाओंमें स्थान मिलता है) उन सबको लाँघकर निश्चय ही सनातन परम धामको प्राप्त होता है।

क्षणभङ्गुर मनुष्य-देह इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये मिला है, इसीसे इसको दुर्लभ कहा है, ऐसे वरदानस्वरूप विवेकसम्पन्न मनुष्य-देहको प्राप्त करके यदि कोई उस विवेकको केवल शरीर सजाने और फैशन बनानेमें ही खर्च करे तो वह अत्यन्त ही दयनीय है। इस बातको स्मरण रखना चाहिये कि मनुष्य-देहसे जीव सन्मार्गमें चलनेपर जैसे उन्नतिके अत्युच्च शिखरपर चढ़ सकता है, वैसे ही कुमार्गमें पड़कर, विषयासक्त होकर, इन्द्रियोंका गुलाम बनकर यह अवनतिके गहरे गड़हेमें भी गिर सकता है, क्योंकि मनुष्य-जीवन कर्म-योनि है, इसी जीवनमें—

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

—की उक्ति चरितार्थ होती है। इस जीवनमें जीव पाप-पुण्य, बन्धन-मुक्तिका साधन कर सकता है। अपने विवेक और बलको चाहे जिस कार्यमें खर्चकर उसीके अनुरूप फलका भागी हो सकता है।

यह मनुष्य-विवेकके दुरुपयोगका ही फल है, जो मनुष्येतर प्राणियोंके लिये आज मनुष्य सबसे बड़ा घातक हो गया है। मनुष्यने अपने दैहिक सुखके लिये ही एक-एक इंच भूमिपर, जंगलके प्रत्येक पेड़पर अपना अधिकार कर लिया है, जिससे वन्य पशु-पक्षियोंकी बुरी गति हो रही है। रेल, मोटर, बड़ी-बड़ी मिलें, कारखाने, हवाईजहाज, बड़े-बड़े महल आदि मानवी सुखके सामानोंने इतर प्राणियोंके जीवनको विभीषिकामय और दुःखमय बना दिया है। इन विशाल दानवी कार्योंके प्रारम्भ, विस्तार और सञ्चालनमें कितनी जीवहिंसा होती है, इसका तो कोई हिसाब ही नहीं! चूल्हे-चक्कीमें होनेवाली प्राणिहिंसाके पापसे मुक्त होनेके लिये नित्य पञ्चमहायज्ञ करनेवाली आर्यजातिके महापुरुषोंने बड़ी-बड़ी मशीनोंकी चक्कियोंके जीव-घातक कार्योंसे बचनेका क्या उपाय सोचा है, कुछ पता नहीं। यही नहीं, आज मनुष्य-सुखके लिये विविध भाँतिसे जीवोंका संहार किया जा रहा है और उसको आवश्यक कार्य समझकर सभी ओरसे उत्साह प्रदान किया जाता है। रेशमके कारखाने, चमड़ेके कारखाने, जूतोंके कारखाने और विदेशी दवाइयोंके कारखाने आदिको देखने-सुननेसे इस बातका पता चल सकता है। मनुष्यने अपने विवेकका यहींतक दुरुपयोग नहीं किया, अपने ही जलनेके लिये उसने अपने अंदर भी दुःखकी आग सुलगा दी। विद्या-बुद्धिसे युक्त कहलानेवाले कुछ इने-गिने मनुष्योंने अपने व्यक्तिगत शारीरिक सुखके लिये बड़े-बड़े दानवी यन्त्र

और कारखानोंके द्वारा अगणित गरीबोंके मुँहका टुकड़ा छीनकर उन्हें तबाह करना शुरू कर दिया। परिणाममें आत्मकलहका जो युद्ध आज मनुष्य-जातिमें छिड़ गया है, उसका कितना भयानक फल होगा, इस बातको कौन बता सकता है? विवेकके दुरुपयोगसे उत्पन्न उच्छृङ्खलतासे आज सभी ओर अशान्ति हो रही है। परलोक और भगवान्‌को भूलकर प्रायः सभी मनुष्य आज अपने-अपने क्षुद्र सुखके लिये छटपटा रहे हैं और मोहान्ध होकर परिणामज्ञानसे शून्य-से हो दानवोचित साधनोंतकको अपना रहे हैं। क्या यही मनुष्य-जीवनका ध्येय है? बड़ी गलती की जा रही है। शीघ्र चेतना चाहिये। मानव-जीवनको पशु या असुर-जीवनमें परिणत न कर इसे देव या भागवत-जीवन बनाना चाहिये। हृदयमें ईश्वरका अधिष्ठान समझकर उसीकी प्रसन्नताके लिये उसकी आज्ञाके अनुसार चलना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये, पापकी प्रेरणा हृदयस्थ ईश्वरकी आज्ञा नहीं है। वह तो हमारे हृदयमें छिपे हुए काम, क्रोध, लोभ, अज्ञान प्रभृति असुरोंकी प्रेरणा है, जो भगवान्‌की विस्मृति कराकर हमें भयानक नरकाग्निमें जलानेके लिये हमारे अंदर डेरा डाले हुए हैं। इन असुरोंको पहचानकर इनसे बचना चाहिये। वैराग्यके शस्त्रसे इन्हें मारना चाहिये। वैराग्यका उदय—वास्तविक विरागकी उत्पत्ति तभी होगी, जब हमारे जीवनका ध्येय निश्चित हो जायगा, जब हमारी बुद्धि मोहके कलिलसे निकल जायगी, जब उसे सांसारिक उन्नति और सांसारिक सुखोंका वास्तविक स्वरूप दीख जायगा।

इसीके लिये सत्सङ्ग, सत्-शास्त्राध्ययन, यम-नियम आदिकी आवश्यकता है। मनुष्य-जीवन बहुत थोड़ा है, प्रतिक्षण हमारे जीवनका नाश हो रहा है, अनेक प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ सामने हैं, अतएव बहुत ही शीघ्र उस उपायमें लग जाना चाहिये, जिससे हम तुरंत ही अपने जीवनका ध्येय निश्चितकर उसको पानेके लिये गुरु और शास्त्रकथित मार्गपर आरूढ़ होकर चलना आरम्भ कर दें।

भगवत्कृपापर विश्वास करके जीवनको उनकी सेवामें लगा दीजिये, फिर देखिये उनकी कृपासे सारी कठिनाइयाँ आप ही दूर हो जाती हैं। **मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।**

भगवान् श्रीरामके अवतार-हेतु

(मानसमराल पं॰ श्रीजगेशनारायणजी शर्मा)

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके अवतारके विषयमें भारतीय साहित्यमें विस्तृत विवेचन किया गया है।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने रामायणके पंद्रहवें सर्गमें राम-अवतारकी चर्चा की है। उनके अनुसार भगवान् विष्णुने ही रामके रूपमें अवतार धारण किया था। रावणके अत्याचारसे समस्त देव, गन्धर्व, मनुष्यादि जब भयभीत हो गये, तब सबने मिलकर भगवान्‌से प्रार्थना की कि आप महाराज दशरथके यहाँ पुत्रके रूपमें अवतार लेकर लोककण्टक रावणका उच्छेद कर त्रिलोकीका कण्टक दूर करें—

राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो॥
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः।
अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्।
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम्॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्।

(वा॰ रा॰ १।१५।१९—२२)

देवताओंकी स्तुति सुनकर भगवान् प्रकट हो गये। उन्होंने अभयत्व प्रदान करते हुए उनको आश्वासन दिया कि मैं आप लोगोंका दुःख दूर करनेके लिये मानव (राम)-रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा तथा कुलसहित रावणका वध करूँगा—

भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम्॥
हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च॥

(वा॰ रा॰ १।१५।२८-२९)

अध्यात्मरामायणमें पार्वतीजी भगवान् भूतभावन महादेवसे श्रीरामके अवतारके सम्बन्धमें जिज्ञासा करती हैं। उनकी जिज्ञासाके समाधानमें भगवान् शङ्कर रामावतारके विषयमें विस्तारसे चर्चा करते हैं। सर्वप्रथम वे पार्वतीजीको सुन्दर प्रश्न पूछनेके लिये धन्यवाद देते हैं। तदनन्तर सदाशिव

भगवान्के निर्गुण-सगुण विश्वव्यापी विग्रहका विस्तारसे वर्णन करते हैं। पुन रावणके अत्याचारसे पीड़ित भूमि और देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाकर अपना दुःख प्रकट करनेकी कथा सुनाते हैं। ब्रह्माजी देखते हैं कि यह कार्य मेरी शक्तिसे परे है। फिर भगवान् शङ्करकी प्रेरणासे ब्रह्मादि सभी देव भगवान् नारायणकी स्तुति करके उनसे रावणका वध कर पृथ्वीका भार उतारनेका आग्रह करते हैं। देवताओंकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् नारायण मनुष्यरूपमें अवतार ग्रहण करनेका आश्वासन देते हैं।

आनन्दरामायणके 'सारकाण्ड' में द्वितीय सर्गके अन्तर्गत भगवान् शिव भवानीको राम-कथा सुनाते हैं। पहले रावणके अत्याचारका वर्णन करते हैं। पृथ्वी रावणके अत्याचारसे संत्रस्त होकर देवताओंके साथ ब्रह्माजीके पास जाती है। ब्रह्मा सभीको साथ लेकर विष्णुलोकमें जाते हैं। वहाँ पृथ्वीने अपनी तथा धर्मकी रक्षाके लिये भगवान् नारायणसे प्रार्थना की। भगवान्ने कहा कि मैं आप सबका दुःख दूर करनेके लिये पृथ्वीपर अवतार ग्रहण करूँगा।

गीतामें अपने अवतारके हेतुका वर्णन करते हुए भगवान्ने कहा है कि जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब धर्मकी संस्थापनाके लिये, साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंके विनाशके लिये मैं अवतार ग्रहण करता हूँ—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(४।७-८)

श्रीमद्भागवत महापुराणके नवम स्कन्धमें भी रामचरित कुछ संक्षिप्त रूपमें वर्णित है। तदनुसार देवताओंकी प्रार्थनापर साक्षात् परब्रह्म श्रीहरि ही अपने अंशसे चार रूप धारण करके दशरथके पुत्र-रूपमें अवतरित होते हैं—

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः॥

(श्रीमद्भा० ९।१०।२)

गोस्वामी तुलसीदासविरचित 'श्रीरामचरितमानस'में श्रीरामकी अवतार-कथाको अत्यन्त रोचक रूपसे प्रस्तुत किया गया है। महर्षि भरद्वाज परम विवेकी तत्त्वज्ञ ऋषि याज्ञवल्क्यसे संशयनिवृत्ति-हेतु रामविषयक प्रश्न करते हैं—

राम कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा॥
प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥

(मानस १।४६।६-८)

महर्षिने कहा कि एक बार त्रेतायुगमें भगवान् शिव और माता सती अगस्त्य मुनिके आश्रममें पधारे। अगस्त्य मुनिने उन्हें विस्तारके साथ राम-कथा सुनायी। भगवान् शङ्कर भी उसे बड़ी श्रद्धासे सुनते रहे। मुनिने रामभक्तिका स्वरूप पूछा! भगवान् शङ्करने भी उन्हें अधिकारी समझकर 'प्रपत्तिरहस्य' का प्रतिपादन किया। तत्पश्चात् मुनिसे विदा लेकर जब शिवदम्पति कैलास वापस लौट रहे थे कि मार्गमें एक अलौकिक घटना घटी। उसी समय भगवान्का अवतार हो चुका था। पिताकी आज्ञासे भगवान् राम दण्डक वनमें निवास कर रहे थे, तभी मूर्ख रावणने जानकीजीका हरण कर लिया। वे सीताके वियोगमें उसी मार्गसे विलाप करते हुए आ रहे थे, जिस मार्गसे शिव और सती कैलास जा रहे थे। अपने इष्टदेवको विरही पुरुषकी तरह नरलीला करते हुए देखकर शङ्करजी पुलकित हो उठे। उन्हें ऐसा लगा कि जिनकी कथा वे कुम्भज ऋषिके आश्रमसे सुनकर आ रहे हैं, उन प्रभुने साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया, किंतु प्रभुकी नरलीला पास जानेसे कहीं बिगड़ न जाय, अतः वे अपने इष्टदेवको दूरसे ही बार-बार प्रणाम करने लगे। शङ्करजीके आनन्द और उनकी भावदशाको देखकर सती चकित रह गयीं। उन्हें यह रहस्य समझमें नहीं आया कि आखिर सामान्य राजकुमारको शङ्करजी 'जय सच्चिदानन्द' कहकर प्रणाम क्यों कर रहे हैं? सतीके संदेहको गोस्वामीजीने बड़े ही रोचक, मनोवैज्ञानिक और तर्कसंगत शैलीमें प्रस्तुत किया है—

तिन्ह नृप सुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥
ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी।
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥
संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा॥

(मानस १।५०।७-८, १।५१।१-४)

भगवान् शङ्करने उन्हें बहुत समझाया, पर सतीको प्रबोध नहीं हुआ। तब उन्होंने कहा कि यदि तुम्हारे मनमें अत्यन्त संदेह है तो समीप जाकर परीक्षा ले लो कि ये राजकुमार हैं अथवा ब्रह्म? सती इससे सहमत हो गयीं। वे सीताका रूप धारण कर उसी मार्गपर खड़ी हो गयीं। किंतु जब रामने सतीको माता कहकर प्रणाम किया और पूछा कि भगवान् शङ्कर कहाँ हैं? आप अकेली वनमें क्यों विचरण कर रही हैं? तब भगवान्‌के गूढ़ वचनको सुनकर सती अत्यन्त भयभीत हो गयीं। वे चिन्तायुक्त हो दुःखी मनसे भगवान् शिवके पास चलीं—

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥
राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु॥

(मानस १।५३।७-८)

बीचमें भगवान् रामने अपनी मायाकी एक झलक सतीको दिखलायी, जिससे वे और अधिक भयभीत हो उठीं। समीप जानेपर भगवान् आशुतोषने पूछा कि किस प्रकार परीक्षा ली, तो वे साफ झूठ बोल गयीं। भगवान् शङ्करने ध्यानस्थ होकर सती-चरित्रको जान लिया और सीताजीका रूप धारण करनेके कारण उन्हें माता मानकर पत्नीत्वका सम्बन्ध छोड़ दिया। कुछ दिन बाद सतीने भी शिव-निन्दाको सुनकर दक्ष-यज्ञमें अपना शरीर त्याग दिया। पुनः अगले जन्ममें वे पार्वतीरूपसे कठोर तपस्या कर शङ्करजीकी अर्धाङ्गिनी बनीं। किंतु उनके मनमें राम-विषयक शङ्का ज्यों-की-त्यों बनी रही। एक बार कैलास-शिखरपर परम एकान्त शान्त और प्रसन्नमुद्रामें विराजमान भगवान् शङ्करके समक्ष पार्वतीने बहुत अनुनय-विनयके पश्चात् अपनी वही जिज्ञासा रखी—

राम सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई॥
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

(मानस १।१०८।४)

पार्वतीकी ब्रह्मविषयक जिज्ञासा सुनकर भगवान् आशुतोष आनन्दमग्न हो गये। पुलकित वाणीसे वे लोक-कल्याणकारी प्रश्नके लिये पार्वतीको धन्यवाद देने लगे। पार्वतीकी मूल जिज्ञासा दो है। एक तो निर्गुणब्रह्म सगुण क्यों बनता है तथा दूसरा यह कि रामके अवतार-ग्रहणका कारण क्या है—

प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥

(मानस १।११०।४-५)

पार्वतीके प्रश्नको सुनकर पहले तो भगवान् निर्गुण-सगुण-तत्त्वकी विशद व्याख्या करते हैं, पुनः वे रामके अवतार-ग्रहणके कारणोंपर प्रकाश डालते हैं। वे पहले प्रभुके धर्म-रक्षार्थ अवतरणकी बात करते हैं। फिर निष्कर्षमें यह बतलाते हैं कि उनके अवतारका मुख्य प्रयोजन भक्तोंका उद्धार एवं लीलाचरित्रका निर्माण है, जिसके श्रवण-मनन एवं ज्ञानद्वारा भक्त संसार-सागरसे पार हो कृतार्थ हो जाते हैं।

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

(मानस १।१२१)

इसी प्रसंगमें वे जय-विजय, नारद-शाप और स्वायम्भुव मनुकी तपस्याकी कथाएँ भी पार्वतीजीको सुनाते हैं, जिनके विषयमें गोस्वामी तुलसीदासजी एवं अन्य रामायणियोंकी यही धारणा है कि स्वायम्भुव मनुको छोड़कर अन्य अवतार शेषशायी या वैकुण्ठाधिपति श्रीविष्णुके हैं। मनु-शतरूपाके लिये अवतरित-स्वरूप श्रीराम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही हैं। इन्हींका चरित्र काकभुशुण्डि, शिवजी, याज्ञवल्क्य एवं गोस्वामीजी भी रामचरितमानसके रूपमें प्रस्तुत करते हैं। गोस्वामीजीके मतसे यह निर्गुण-निराकार ब्रह्म भक्तोंकी तीव्र साधना एवं प्रेम-भक्तिके कारण किसी भी क्षण उनके सामने अवतरित या प्रकट हो सकता है—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
× × × ×
अगुन अलेप अमान एक रस। रामु सगुन भए भगत प्रेम बस॥

(मानस १।११६।२, २।२१९।६)

यही रामावतारका मुख्य हेतु है जो सम्पूर्ण रामचरितमानस, सभी उपनिषदों एवं गीता आदिमें भी बार-बार अभ्यासके द्वारा निरूपित है और वास्तविक योगी, ज्ञानी, भक्त, पण्डित और विद्वान् भी वही है जो ध्रुव, प्रह्लादकी तरह प्रेमादि साधनाओंके द्वारा तत्काल भगवान्‌को प्राप्त कर लेते हैं—

सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रह्लादा॥
(मानस २।२६५।५)

गीताके प्रायः प्रत्येक श्लोकमें एक ही भाव अभिव्यञ्जित है। केवल भगवान् ही प्रकट हैं और तत्त्वतः प्राणिमात्रके अन्तर्बाह्य व्याप्त हैं, किंतु दीर्घकालके दुरभ्यासके कारण अध्यस्त मिथ्या-विश्व ही प्रतीत होता है और सत्-तत्त्व परमात्मा बुद्धिगम्य होनेपर भी प्रतीत नहीं होता। इस संदर्भमें यहाँ केवल एक श्लोक प्रस्तुत किया जाता है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

यही तत्त्व साधनाभ्याससे प्रत्यक्ष अवतरित हो जाता है।

श्रीरामजन्मभूमि हमारी महान् विरासत है

(ब्रह्मलीन श्रीदेवराहाबाबाजी महाराजसे लिया गया अन्तिम साक्षात्कार)

[योगिराज पूज्य श्रीदेवराहाबाबाजी महाराज पुरानी पीढ़ीके महान् सिद्ध संत थे। वे जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य महाराजके अनुयायी तथा पातञ्जल-योगके महान् विद्वान् संत थे। वेदों, उपनिषदों, गीता, रामायण, पुराणों तथा योगसाहित्यका उनका गहन अध्ययन था। भारत ही नहीं विदेशोंके भी करोड़ों श्रद्धालु बाबाके दर्शन-आशीर्वादके लिये लालायित रहा करते थे। बाबा वृन्दावनमें यमुना-तटपर स्थित मचानपर रहा करते थे। माह जूनमें योगिनी एकादशीके पावन दिन बाबाने योगका 'सिद्ध आसन' धारण किया और वे ब्रह्ममें विलीन हो गये। महाराजश्रीके ब्रह्मीभूत होनेके ठीक एक माह पूर्व अचला एकादशीके दिन स्वर्गीय भक्त श्रीरामशरणदासजी (पिलखुआ) जो बाबाके स्नेहपात्र थे, इनके सुपुत्र श्रीशिवकुमारजी गोयलसे बाबाकी भेंटवार्ता हुई, जिसमें उन्होंने गोरक्षा, श्रीरामजन्मभूमि, सनातनधर्म, देशमें बढ़ रही नास्तिकता, विश्वमें बढ़ रही अशान्ति आदि ज्वलन्त बातोंपर प्रश्न किया और बाबाने उनका जो उत्तर दिया, उसे यहाँ संक्षेपमें प्रस्तुत किया जा रहा है—सं०]

अतिभौतिकवाद अशान्तिकी जड़

प्रश्न—बाबा! आज पूरे संसारमें घोर अशान्तिका वातावरण है, चारों ओर हिंसा, आतङ्क, अशान्तिका बोलबाला है, इसका क्या कारण है?

उत्तर—अतिभौतिकवाद ही इन सबकी जड़ है। धर्मशास्त्रोंमें बताये मार्गपर चलकर, संतोष तथा सादगीका जीवन जीकर ही सच्ची सुख-शान्ति प्राप्त की जा सकती है। आधुनिकतम सुख-साधनोंकी होड़ने मानवको दानव बना दिया है। इसी होड़के लिये मानव मानवका शोषण करता है, उसका गला काटनेमें भी नहीं हिचकिचाता। धर्ममार्गपर चलनेसे ही मानव सच्ची मानवताकी भावनासे प्रेरित रह सकता है।

धर्म मजहब नहीं है

प्रश्न—बाबा! आपके मतमें धर्म क्या है? आज तो नये-नये मत-मजहब बनते जा रहे हैं। धर्मके नामपर चारों ओर रक्तपात हो रहा है?

उत्तर—बच्चा! तुमने यह बहुत अच्छा प्रश्न किया है। **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** —समग्र वेद धर्मका मूल है। वेदोंके माध्यमसे ईश्वरने धर्मका शाश्वत संदेश दिया है। वेदोंमें मानवमात्रके कल्याणका भाव निहित है। कहा गया है— **'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा'**—धर्म समस्त विश्वका आधार है। भगवान् मनुने धर्मके दस लक्षण बताये हैं— 'धीरज, सहनशीलता, मनपर नियन्त्रण, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियोंको अपने अधीन रखना, बुद्धि तथा विद्याको साथ रखना, सच बोलना और क्रोध न करना।'

ईश्वरपर दृढ़ आस्था हमें पापकर्मसे रोकती है। ईश्वर-विश्वास सद्‌विचारों, नैतिकता तथा सेवाकी प्रेरणा देता है। यह सब हमारे सनातन हिन्दूधर्मका तत्त्व है। धर्म और मत-मजहबोंकी तुलना करना अज्ञान है। मत-मजहबवाले लड़ते हैं, 'धर्म'पर विश्वास रखनेवाला कभी नहीं लड़ता।

अब तो कलियुग है। धर्म-विरोधी आचरण करनेवाले पाखंडी अपनेको भगवान्‌का 'अवतार' तक घोषित करने लगे हैं। ऐसे हिरण्यकशिपुओंसे धार्मिक जनोंको सावधान रहना चाहिये। धर्मशास्त्रोंके बताये मार्गका आचरण ही कल्याणका साधन है। गोपाल, गौ, गङ्गा, गीता, गायत्री—ये धर्मप्राण भारतके पाँच दिव्य साधन हैं। इनकी शरणमें जाकर कल्याणमें संदेह नहीं करना चाहिये।

गौमाताकी हत्या कलंक है

प्रश्न—बाबा ! अब तो धर्मप्राण भारतमें भी अशान्ति, हिंसा, आतङ्क व्याप्त होता जा रहा है और गोहत्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। भारतको पुनः जगद्गुरु-पद प्राप्त करनेके लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—'धर्मनिरपेक्षता'के नामपर धार्मिक मूल्योंकी अवहेलनाका ही यह कुपरिणाम है। 'धर्म'से नाक-भौं सिकोड़कर, धर्म-शिक्षाका पठन-पाठन रोककर हमने बहुत बड़ी भूल की है। इसीलिये युवा पीढ़ी भटक गयी है।

गौ माता धर्मका साक्षात् रूप है। गौ साक्षात् देवी है, जगत्-जननी है। स्वाधीन भारतमें भी गोमाताकी हत्या जारी रखकर हमने अपने धर्मप्राण-रूपको विकृत कर दिया है। गोहत्या बंद करके ही हम भारतके सच्चे स्वरूपको जीवित रख सकते हैं। धर्मकी शिक्षा देकर ही बच्चोंको उनके राष्ट्र और समाजके प्रति कर्तव्योंसे प्रेरित किया जा सकता है।

श्रीराममन्दिर अवश्य बनेगा

प्रश्न—श्रीरामजन्मभूमि-मन्दिरका प्रश्न आज बहुत चर्चित है, इस बारेमें आपका क्या मत है ?

उत्तर—साक्षात् ब्रह्म भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जन्मस्थलीपर मन्दिर नहीं तो और क्या बनेगा ? भारतके प्राण श्रीराम हैं। बाबर-जैसा विदेशी लुटेरा तो इतिहासका कलंक ही माना जायगा। श्रीराम और बाबरकी तुलना करनेवाले अज्ञानी हैं।

श्रीराममन्दिर तो बनेगा ही, इसमें संदेह कैसा ! श्रीराममन्दिरका प्रश्न तो देशकी अस्मिताका प्रश्न है। अच्छे मुसलमान भी इस पुनीत काममें सहयोग देंगे। ईश्वरीय कार्य बाधाओंके बावजूद कभी नहीं रुका करते।

आशीर्वाद देना हमारा कर्तव्य है

प्रश्न—महाराजश्री ! अन्तिम प्रश्न करनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। समाचारपत्रोंमें छपता रहता है कि आपने जिन नेताओंको आशीर्वाद दिया, उनमेंसे अनेक चुनाव हार गये, सत्तासे हटा दिये गये। इस बारेमें आपका क्या कहना है ?

उत्तर—बच्चा ! हमारा काम सभी आगन्तुकोंके कल्याणकी कामना करना है। फल तो प्रत्येकको अपने कर्मका भोगना पड़ता है।

जुआरी यदि हमसे आशीर्वाद लेगा तो हम कहेंगे 'तेरा कल्याण हो।' परंतु ध्यान रखो कि जुआरीका कल्याण हमेशा 'हारने'में होता है, जीतनेसे तो उसकी जुएकी लत और बढ़ेगी तथा सत्यानाश होगा। यदि नेतागण अपने धर्म-विरुद्ध आचरणको जारी रखते हुए यह आशा रखें कि हमारे आशीर्वादसे वे पापमुक्त हो जायँगे तो यह उनका मात्र भ्रम ही है। हमने अनेक नेताओंसे गोहत्या बंद करनेको कहा। किसीने भी अपना वचन नहीं निभाया। क्या वे गोहत्याके इस घोर पातकसे मुक्त हो जायँगे, केवल हमारे दर्शनोंसे ? धर्मशास्त्रोंके मात्र दर्शन नहीं, उनका पालन करना चाहिये। हमारी बातोंपर अमल करो तभी तो दर्शनोंकी सार्थकता है।

रामनाममें अपार शक्ति है

प्रश्न—बाबा ! चलती बार कोई संदेश दीजिये।

उत्तर—भगवान् श्रीरामके पावन नामके उच्चारणसे बड़ा संदेश और क्या होगा। जब भी अवसर मिले उठते-बैठते 'श्रीराम श्रीराम' का पावन नाम उच्चारो। श्रीरामके नाममें बड़ी अनूठी दुर्लभ शक्ति है। इससे शरीर, वाणीं, मन्न, मस्तिष्क सभी पवित्र होते हैं। कलियुगमें श्रीरामनामसे तथा श्रीकृष्ण नामसे बड़ा कोई मन्त्र नहीं है। इसे किसी भी अवस्थामें उठते-बैठते, सोते-चलते, खाते-पीते जपा जा सकता है।

श्रीराम-नामका पावन उच्चारण करो तथा ईमानदारीका जीवन जियो। किसीका बुरा न चाहो, न निन्दा करो, न सुनो। प्राणिमात्रमें भगवान्के दर्शन करो, बस, मानव-जीवन सफल हो जायगा।

(भेंटकर्ता—श्रीशिवकुमारजी गोयल)

जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित मनमाना घोर तप करते हैं और दम्भ, अहंकार, कामना, आसक्ति तथा शरीरादिके बलका अभिमान रखनेवाले हैं, वे शरीरमें स्थित भूतसमुदायको और अन्तःकरणमें स्थित भगवान्को कष्ट देनेवाले हैं, उन अज्ञानियोंको आसुरी स्वभाववाला ही जानो।—श्रीमद्भगवद्गीता

साधकोंके प्रति—

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जिससे क्रियाकी सिद्धि होती है, जो क्रियाको उत्पन्न करनेवाला है, उसको 'कारक' कहते हैं। कारक छः प्रकारके होते हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। इन छहों कारकोंकी आवश्यकता सांसारिक क्रियाओंकी सिद्धिमें ही है। परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें कारकोंकी आवश्यकता नहीं है अर्थात् वहाँ कारक नहीं चलते। कारण कि परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति क्रियासे नहीं होती। तात्पर्य है कि सब कारक प्रकृतिमें हैं और प्रकृतिके कार्य हैं। प्रकृतिसे अतीत तत्त्वमें कोई कारक नहीं है। कारकोंमें प्रकृतिजन्य पदार्थ और क्रियाका आश्रय लेना पड़ता है, जिससे अभ्यासकी सिद्धि होती है। अभ्याससे एक नयी अवस्थाका निर्माण होता है, तत्त्वका अनुभव नहीं होता; क्योंकि तत्त्वमें अवस्था नहीं है। तत्त्वका अनुभव तो विवेकके द्वारा होता है। यह विवेक प्राणिमात्रको स्वतः प्राप्त है। परंतु मनुष्यके सिवाय अन्य प्राणियोंमें जो विवेक है, उससे उनका शरीर-निर्वाह तो हो जाता है, पर तत्त्वज्ञान नहीं होता। कारण कि विवेकका उपयोग वे केवल शरीर-निर्वाहमें ही करते हैं। उससे आगे (शरीरसे अतीत तत्त्वमें) उनकी जिज्ञासा नहीं होती[१]। मनुष्य अपने विवेकका सदुपयोग करके, विवेकका आदर करके देवताओंसे भी ऊँचा उठ सकता है, भगवान्‌को भी अपने वशमें कर सकता है। परंतु भोगेच्छाके कारण अपने विवेकका दुरुपयोग करके, विवेकका अनादर करके पशुओंसे भी नीचा गिर सकता है और चौरासी लाख योनियों तथा नरकोंमें जा सकता है[२]! इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह अपने विवेकका आदर करे, विवेक-विरोधी कोई कार्य न करे।

प्राणिमात्रमें अपरा (जड) और परा (चेतन) दोनों प्रकृतियाँ हैं। 'अहम्' अपरा प्रकृति है[३] और 'जीव' परा प्रकृति है। अहम् और जीव अर्थात् जड और चेतनके सम्बन्धका ही नाम चिज्जडग्रन्थि है—

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥

(मानस ७। ११७। २)

जड-चेतनकी यह ग्रन्थि मिथ्या है, सत्य नहीं है, क्योंकि

१-अन्य प्राणियोंमें यह विवेक स्थावरकी अपेक्षा जंगममें अधिक रहता है। जंगममें भी जलचरकी अपेक्षा थलचर प्राणियोंमें और थलचरकी अपेक्षा नभचर प्राणियोंमें अधिक विवेक रहता है। परंतु उनमें यह विवेक शरीर-निर्वाहतक ही सीमित रहता है, जिससे वे खाद्य-अखाद्य आदि पदार्थोंकी भिन्नताको जान लेते हैं। परंतु सत्-असत्, कर्तव्य-अकर्तव्यका विवेक उनमें जाग्रत् नहीं होता। कारण कि उनमें विवेकके योग्य बुद्धि नहीं है और अधिकार भी नहीं है। यह विवेक मनुष्यमें ही जाग्रत् होता है। कारण कि मनुष्यके सिवाय अन्य योनियाँ भोगप्रधान हैं। मनुष्य अपने विवेकको महत्त्व देकर शरीरसे अतीत तत्त्वकी प्राप्ति कर सकता है, जन्म-मरणके बन्धनसे छूट सकता है। अतः मनुष्यपर अपना उद्धार करनेकी विशेष जिम्मेवारी है।

२-मनुष्य होकर भी अपने विवेकका आदर न करनेसे जैसा पतन होता है, वैसा पतन पशुका भी नहीं होता! झूठ, कपट, बेईमानी, धोखेबाजी, अन्याय, हिंसा आदि पाप मनुष्य ही करता है, पशु नहीं करते। पशु नये पाप नहीं करते, प्रत्युत पूर्वजन्ममें किये गये पापोंका ही फल भोगकर उन्नतिकी ओर जाते हैं, पर मनुष्य सुख-लोलुपताके कारण नये-नये पाप करके पतनकी ओर जाता है। अपने विवेकको वह नये-नये पापोंकी खोज करनेमें ही लगा देता है। भोगासक्तिके कारण उसका विवेक इन्द्रियोंके भोगोंतक ही सीमित रहता है, उससे ऊँचा नहीं उठता—'कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः' (गीता १६। ११)। इस प्रकार पशु तो अपने कर्मोंका फल भोगकर मनुष्ययोनिकी तरफ आते हैं, पर मनुष्य नये-नये पाप करके पशुयोनिसे भी नीचे (नरकोंमें) चला जाता है! इसलिये ऐसे मनुष्यके संगको नरकवाससे भी बुरा कहा गया है—

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥ (मानस ५। ४६। ४)

कारण कि नरकोंमें तो पाप नष्ट होकर शुद्धि आती है, पर दुष्टोंके संगसे अशुद्धि आती है, पाप बनते हैं।

३-गीतामें भगवान्‌ने अपरा प्रकृतिके आठ भेद बताये हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार (७। ४-५)। इन सबमें बन्धनका मुख्य कारण 'अहंकार' ही है। पृथ्वी, जल, तेज आदिमें परस्पर बहुत तारतम्य होनेपर भी वे सब एक जातिके (अपरा) ही हैं। अतः जिस जातिकी पृथ्वी है, उसी जातिका अहंकार है अर्थात् अहंकार भी मिट्टीके ढेलेकी तरह जड़ है इस रहस्यकी ओर विशेष लक्ष्य करानेके लिये ही भगवान्‌ने 'इयम्' पदका प्रयोग किया है—'अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा' (७। ४)। यही बात भगवान्‌ने अहंकारको 'क्षेत्र' बताते हुए 'एतत्' पदसे कही है (१३। १)। जीव इस 'अहम्'के साथ एकता कर लेता है अर्थात् 'अहम्'को अपना स्वरूप मान लेता है, जिससे उसका आकर्षण जड़ताकी ओर हो जाता है और वह जड़ताके वशमें हो जाता है।

जड़ और चेतन एक-दूसरेसे सर्वथा विरुद्ध हैं। चेतन प्रकाशक है, जड़ प्रकाश्य है। चेतन अपरिवर्तनशील है, जड़ परिवर्तनशील है। चेतन कभी मिटता नहीं, जड़ कभी टिकता नहीं। दोनोंका स्वभाव अलग-अलग है। परंतु अलग-अलग स्वभाव होते हुए भी दोनोंका एक-दूसरेसे वैर-विरोध नहीं है। इतना ही नहीं, चेतन जड़का प्रकाशक है, सहायक है। असत्‌की सिद्धि भी सत्-रूप चेतनसे ही होती है। चेतन ही असत्‌को सत्ता देता है। हाँ, तत्त्वकी जिज्ञासाका असत् (जड़)से वैर है; क्योंकि जिज्ञासासे जड़के साथ सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। इसलिये एक दृष्टिसे तत्त्वकी अपेक्षा तत्त्वकी जिज्ञासा श्रेष्ठ है। भोगेच्छा तो संसार (पदार्थ और क्रिया)से सम्बन्ध जोड़ती है, पर जिज्ञासा संसारसे सम्बन्ध तोड़ती है। भोगेच्छामें जड़ता (अहंकार)की मुख्यता रहती है और जिज्ञासामें चेतनकी मुख्यता रहती है। तात्पर्य है कि मनुष्य जड़-अंशकी प्रधानतासे संसारकी, भोगोंकी इच्छा करता है और चेतन-अंशकी प्रधानतासे अपने उद्धारकी, मुक्तिकी, परमात्मतत्त्वकी इच्छा (जिज्ञासा) करता है।

मनुष्य जबतक जड़-अंश (अहंता) की प्रधानतासे संसारके भोगोंमें लिप्त रहेगा, तबतक उसको कभी परमशान्ति, परम आनन्द नहीं मिलेगा। ब्रह्माका पद मिल जाय तो भी उसको परमशान्ति नहीं मिलेगी। परिवर्तनशील वस्तुसे अपरिवर्तनशीलको शान्ति कैसे मिल सकती है। असत्‌से सत्‌की पूर्ति कैसे हो सकती है? परंतु जब मनुष्य चेतनकी प्रधानताको लेकर (जड़ताका त्याग करते हुए) चलेगा, तब जड़-अंश (अहम्) मिट जायगा और शुद्ध चेतन रह जायगा। जड़-अंश मिटनेसे आसक्तिका सर्वथा अभाव हो जायगा। आसक्तिका सर्वथा अभाव होनेपर पूर्णता हो जायगी[1] अर्थात् वह कृतकृत्य, ज्ञातज्ञातव्य और प्राप्तप्राप्तव्य हो जायगा। वास्तवमें पूर्णता तो स्वतःसिद्ध है। जड़के सम्बन्धसे ही पूर्णताका अनुभव नहीं होता। जड़के सम्बन्धका अत्यन्ताभाव होनेपर, जड़से सर्वथा असंग होनेपर स्वतः पूर्णताका अनुभव हो जाता है, जो पहलेसे ही है। परंतु केवल परमात्मतत्त्वकी, स्वरूपके बोधकी जिज्ञासा होनेसे, भगवान्‌के प्रेमकी, दर्शनकी अभिलाषा होनेसे ही यह होगा। तात्पर्य है कि जिज्ञासा होनेसे विवेक विशेषतासे जाग्रत् होगा, जिससे जड़तासे असंगता हो जायगी। असंगता होते ही जड़की निवृत्ति अर्थात् अहंकारका अभाव हो जायगा। अहंकारका अभाव होनेसे ममताका भी स्वतः अभाव हो जायगा[2] और अपने असंग स्वरूपका अनुभव हो जायगा। इसमें कोई कारक काम नहीं करेगा।

सब कारकोंमें 'कर्ता' मुख्य है। कर्तामें चेतनकी झलक आती है, अन्य कारकोंमें नहीं। वास्तवमें 'कर्ता' नाम चेतनका नहीं है। यह माना हुआ कर्ता है—**'अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते'** (गीता ३।२७)। इसलिये गीतामें जहाँ भगवान्‌ने कर्ममात्रकी सिद्धिमें पाँच हेतु (अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा और दैव) बताये हैं, वहाँ शुद्ध आत्मा (अपने स्वरूप) को कर्ता माननेवालेकी निन्दा की है कि उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है, वह दुर्मति है[3]। कारण कि स्वरूपमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व दोनों ही नहीं हैं—**'शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते'** (गीता १३।३१)। जब स्वरूप कर्ता नहीं है तो फिर कर्ता कौन होता है? इसको भगवान्‌ने गीतामें कई प्रकारसे बताया है, जैसे—सम्पूर्ण क्रियाएँ प्रकृतिके द्वारा ही होती हैं अर्थात् प्रकृति कर्ता है (१३।२९); सम्पूर्ण क्रियाएँ गुणोंके द्वारा होती हैं; गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं अर्थात् गुण कर्ता हैं (३।२७-२८; १४।२३); गुणोंके सिवाय अन्य कोई कर्ता है ही नहीं (१४।१९); इन्द्रियाँ ही इन्द्रियोंके विषयोंमें बरत रही हैं अर्थात् इन्द्रियाँ कर्ता हैं (५।९)।

१- जबतक आसक्तिका सर्वथा अभाव नहीं होता, तबतक ऊँची-से-ऊँची बातें कर सकते हैं, बढ़िया विवेचन कर सकते हैं, व्याख्यान दे सकते हैं, पुस्तकें लिख सकते हैं; परंतु परमशान्तिकी प्राप्ति नहीं कर सकते।

२- जब चेतन जड़तासे सम्बन्ध जोड़ता है, तब उसमें 'मैं'-पन उत्पन्न होता है। शरीरमें मैं-पन और मेरापन (अहंता और ममता) दोनों होते हैं तथा अन्य पदार्थोंमें मेरा-पन होता है। परंतु पदार्थोंको लेकर अपनेमें अभिमान करनेसे मैं-पन भी साथमें मिल जाता है और दृढ़ हो जाता है; जैसे—मैं धनवान् हूँ आदि। [अपनेमें विद्या, बुद्धि, योग्यता आदिका आरोप करनेसे तो 'अभिमान' होता है और धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद आदिको लेकर अपनेमें बड़प्पनका आरोप करनेसे 'दर्प' (घमंड) होता है] जड-अंश हटनेसे मैं-पन और मेरा-पन नहीं रहते, स्वरूप रह जाता है। स्वरूपमें मैं-पन और मेरा-पन दोनों ही नहीं हैं।

३- तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः। पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥ (१८।१६)

तात्पर्य है कि कर्तृत्व प्रकृतिमें ही है, स्वरूपमें नहीं। इसीलिये तत्त्वज्ञ महापुरुष 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ' ऐसा अनुभव करता है—**'नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्'** (गीता ५।८), **'तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः। गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥'** (गीता ३।२८)। भगवान् भी कहते हैं कि जब मनुष्य गुणोंके सिवाय अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता अर्थात् वह क्रियामात्रमें ऐसा अनुभव करता है कि गुणोंके सिवाय दूसरा कोई कर्ता नहीं है और अपनेको गुणोंसे बिलकुल असम्बद्ध अनुभव करता है[1] (जो वास्तवमें है), तब वह मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है[2]।

गीतामें भगवान्ने कर्तापनमें प्रकृतिको और भोक्तापनमें पुरुषको हेतु बताया है[3]। पुरुष (चेतन)को भोक्तापनमें हेतु क्यों बताया? सुख-दुःखका अनुभव अर्थात् भोग चेतनमें ही हो सकता है, जड़में नहीं। सुखी-दुःखी चेतन ही होता है। क्रिया तो जड़में होती है, पर क्रियाका फल (सुखी-दुःखी होना) पुरुषमें होता है। परंतु वास्तवमें प्रकृतिस्थ पुरुष ही सुख-दुःखका भोक्ता बनता है—**'पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्'** (गीता १३।२१)। तात्पर्य है कि अहंकारका सम्बन्ध रहनेसे ही पुरुष सुख-दुःखका भोक्ता बनता है। यदि अहंकारका सम्बन्ध न रहे तो पुरुष सुख-दुःखका भोक्ता नहीं बनता अर्थात् वह सुखी-दुःखी न होकर अपने आनन्दस्वरूपमें स्थित रहता है—**'समदुःखसुखः स्वस्थः'** (गीता १४।२४)। अतः भोक्तापन भी केवल माना हुआ है, वास्तवमें नहीं है। तात्पर्य है कि चेतनमें कर्तृत्व-भोक्तृत्व पहलेसे ही नहीं हैं, इसीलिये ये मिटते हैं[4]। यदि चेतनमें कर्तृत्व-भोक्तृत्व होते तो चेतनके रहते हुए वे कभी मिटते ही नहीं।

जब स्वरूपमें कर्तृत्व ही नहीं है, 'कर्ता'-रूपी कारकके साथ लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है, तब इसका सम्बन्ध अन्य कारकोंके साथ कैसे होगा? अतः पहले साधकको सिद्धान्तसे यह निर्णय करना होगा कि मेरेमें कर्तृत्व-भोक्तृत्व, अहंता-ममता नहीं हैं। यद्यपि यह निर्णय बुद्धि (करण) में दीखता है, तथापि 'ये मेरेमें नहीं हैं'—यह अनुभव स्वयंको होता है। स्वयंका यह अनुभव करना करण-निरपेक्ष साधन है। तात्पर्य है कि पहले बुद्धिसे विचार होता है। विचारके बाद बुद्धिका निर्णय होता है कि मेरेमें कारकमात्रका अभाव है। परंतु इस अभावका अनुभव करनेवाला स्वयं है। स्वयंको होनेवाले इस अनुभवमें कोई कारक नहीं है, प्रत्युत करणसे सम्बन्ध-विच्छेद है।

जिस जगह क्रिया होती है, उसको अधिष्ठान (अधिकरण) कहते हैं। परंतु जहाँ स्वयं अधिष्ठान है, वहाँ क्रिया नहीं है अर्थात् स्वयं किसी भी क्रियाका अधिष्ठान नहीं है। स्वयंमें सबका आरोप होता है; क्योंकि आरोप होनेकी जगह तत्त्व ही है। तत्त्वके सिवाय आरोपित वस्तुकी स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं है। इसलिये स्वयंको सबका अधिष्ठान, आश्रय, आधार, प्रकाशक कहा जाता है।

इस प्रकार स्वयंमें कर्ता, कर्म, करण, अधिकरण आदि कोई भी कारक नहीं है[5]। अतः स्वरूपका बोध अथवा परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति जड़ताके द्वारा नहीं होती, प्रत्युत जड़ताके सम्बन्ध-विच्छेदसे होती है।

═══ ★ ═══

१-स्वरूप (आत्मा) गुणोंसे सर्वथा रहित है—'निर्गुणत्वात्' (गीता १३।३१)। गुण प्रकाश्य हैं। आत्मा प्रकाशक है। गुण परिवर्तनशील हैं, आत्मा अपरिवर्तनशील है। गुण अनित्य हैं, आत्मा नित्य है।

२-नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति। गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥ (गीता १४।१९)।

३-कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते। पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥ (१३।२०)।

४-यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥ (गीता १८।१७)।

५-कारकोंमें कर्ता, कर्म, करण और अधिकरण—ये चारों तो क्रियामें विकृत (परिणत) होते हैं, पर सम्प्रदान और अपादान क्रियामें विकृत नहीं होते, प्रत्युत क्रियामें सहायकमात्र होते हैं, इसलिये इनमें कर्मकर्तृप्रयोग नहीं होता। जैसे, 'सुपात्रको दान दिया'—यह सम्प्रदान कारक है। दान देनेसे दान लेनेवालेमें कोई विकृति नहीं आती। यदि कोई लेनेवाला न हो तो दान सिद्ध नहीं होता, इसलिये दानमें सहायक होनेसे इसको कारक कहा गया है। ऐसे ही 'गाँवसे आया'—यह अपादान कारक है। गाँवसे आनेपर गाँवमें कोई विकृति नहीं आती। परंतु आनेमें सहायक होनेसे इसको कारक कहा गया है।

कर्म चार प्रकारके होते हैं—उत्पाद्य, विकार्य, संस्कार्य और आप्य [कहीं-कहीं निर्वर्त्य, विकार्य और प्राप्य—ये तीन प्रकार बताये गये हैं]। इनमेंसे 'आप्य' कर्ममें भी कोई विकृति नहीं आती; जैसे—'मैंने धन प्राप्त किया' तो धनमें कोई विकृति नहीं आयी।

गीता-सुधातरङ्गिणी

[साधक-संजीवनीके आधारपर]

तेरहवाँ अध्याय

दो०—नमो देव बसुदेव सुत मर्दन चानुर कंस।
देवकि परमानंद प्रद जग गुरुबर जदुबंस ॥ १ ॥
सुनि द्वादस अध्याय महुँ अगुन सगुन तव रूप।
तिन्हमहुँ सगुन उपासि कहुँ उत्तम बरनि अनूप ॥ २ ॥
बहुरि बिबेक बिचार अब बरनहु करि बिस्तार।
जथा देहं अभिमान यह छूटहिं सहज हमार ॥ ३ ॥
सो०—नमो कृष्न भगवान श्रीमुरलीधर तोत्र धर।
करहु बिस्व कल्यान कृपाबृष्टि करि सृष्टि पर ॥ ४ ॥
चौ०-बोलेउ कृष्नचंद्र भगवाना। सुनहु पार्थ मम सखा सुजाना ॥
यह यह कर अस देत दिखाई। छन छन महुँ देखत बिनसाई ॥
देह प्रपंच छेत्र कहलाई। सूछम कारन सब समुदाई ॥
जो एहि मैं मेरा कहि मानइ। तिन्हकहुँ बुध छेत्रग्य बखानइ ॥
सकल छेत्रमहुँ ब्यापक ओही। सोउ छेत्रग्य जानु तुम्ह मोही ॥
दोउ कर भेद ग्यान सुनु भारत। मोरे मत सोइ ग्यान जथारथ ॥
अब यह छेत्र कहउँ जो कैसा। उपजत जिन्ह बिकार जुत जैसा ॥
पुनि छेत्रग्य प्रभाव जनावउँ। जो जस सुनु संछेप सुनावउँ ॥
दो०—ब्रह्मसूत्र अरु बेद रिचा रिषि मुनि करि बिस्तार।
जुगुति अनेक बखान करि बरनिसि बिबिध प्रकार ॥ ५ ॥
पंचभूत इंद्रियन्ह दस बिसय पाँच लगि बीस।
प्रकृति बुद्धि अहँकार मन सहित तत्व चौबीस ॥ ६ ॥
चौ०-देह पिण्ड सुख दुख समुदाई। चेतन संग्यक प्रान कहाई ॥
ईछा द्वेष धृतिहि एहि सारा। कहेउँ समास छेत्र सविकारा ॥
भलपन कर अभिमान न आवा। कहि आचरहिं दंभ नहिं लावा ॥
जेहिते दुख न पाइ कोउ प्रानी। छमा सरलता तन मन बानी ॥
तत्वबोध लगि गुरुपहिं जाई। जो कछु कहहिं करइ मन लाई ॥
सुचि थिरता अरु मन बस होई। रहहिं तनिक संकल्प न कोई ॥
इंद्रिन्ह बिषय ताहि बैरागा। तन महुँ अहंकार करि त्यागा ॥
जनम मरन जठरापन रोगा। दुख अरु दोष लखहिं तस भोगा ॥
सुत दारा गृहादि जस जोई। तहँ घुलि मिलि आसक्त न होई ॥
इष्ट अनिष्ट जोग प्रतिकूला। तामहँ चित नित रह सम तूला ॥
दो०—अव्यभिचारिनि भगति दृढ़ मोमहुँ अनन्य जोग।
रहनि प्रकृति एकांत प्रिय प्रीति न दल संजोग ॥ ७ ॥

बिनु चेतन कहुँ सृष्टि करि सत्ता नहीं सुतंत्र।
लखइ ब्रह्म सर्वत्र सम मनन करहिं अस मंत्र ॥ ८ ॥
बरनिसि साधन बीसि यह सकल कहावइँ ग्यान।
जे एहि तें बिपरीत लख ताहि कहहिं अग्यान ॥ ९ ॥
चौ०-ग्येय तत्व अब कहुँ समुझाई। जानहिं सोइ अमर पद पाई ॥
ब्रह्म अनादि अनंत अपारा। सकइ न कोउ सत असत उचारा ॥
जेहि भुज पद सर्वत्र उदारा। श्रवन नयन मुख सीस न पारा ॥
ब्याप्त करत रहि थित सब माहीं। बहु ब्रह्माण्ड लोक अति ताहीं ॥
सब इंद्रिन्ह ते रहित उदासी। सब इंद्रिन्ह कर बिषय प्रकासी ॥
गुनातीत है सब गुन गहई। अनासक्त बिस्वंभर अहई ॥
निकट दूरि प्रानिन्ह उर बाहर। सूछम अबिसय रूप चराचर ॥
जो अबिभक्त सकल जग माहीं। सोउ बिभक्त इव थित दरसाहीं ॥
उतपति पालन प्रलय करंता। सब जोतिन्ह कर जोति अनंता ॥
छं०—सब जोतियन्ह कर जोति सकल प्रकास ताहि प्रकास है।
अग्यान तम नहिं निकट तहँ सब ह्रदय ताहि निवास है ॥
निज ग्यान ते नर लखत सहजहि सतत ग्यान सरूप है।
सोइ अवसि जाननिहार अविगत परम तत्व अनूप है ॥
दो०—छेत्र ग्यान अरु ग्येय कहुँ करि संछेप जनाइ।
जानइ जो मम भक्तजन मम अभिन्नता पाइ ॥ १० ॥
चौ०-प्रकृति पुरुष अनादि लखु दोऊ। तिन्हकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ ॥
प्रकृति रहइ नहिं एक समाना। उपजइ गुन बिकार तेहि नाना ॥
कारज करन जनित कृति जोई। तिन्हमहँ हेतु प्रकृति जड़ होई ॥
सुख दुख सकल भोग तिन्हमाहीं। बनिहहिं हेतु पुरुष अगवाहीं ॥
थित जब पुरुष प्रकृति महँ होई। भोगहि प्रकृति जनित गुन सोई ॥
सोइ गुन सङ्ग जन्म कर कारन। बिनु समुझहिं नहिं होहिं निवारन ॥
ऊँचरु नीच जोनिमहुँ जाई। पावइ कष्ट महा दुखदाई ॥
पुरुष सरूप सुनहु जो जैसा। बरनउँ अब मैं ताहि बिसेषा ॥
उपद्रष्टा अनुमंता भरता। भोगनिहार प्रसासन करता ॥
दो०—सोइहि पुरुष सरूप तें परमातमा कहाइ।
थित रहता एहि देहमहुँ सदा असङ्गहि थाइ ॥ ११ ॥
जानि प्रकृति तिहुँ गुन सहित पुरुष भिन्न लखि सोइ।
करत सर्वहित कर्म पुनि जन्म कबहुँ नहिं होइ ॥ १२ ॥

कोउ जोगी कोउ ध्यानरत कोउ बिबेक अपनाइ ।
एहि बिधि आपहिं आप महुँ आतम तत्व लखाइ ॥ १३ ॥
चौ०- जो एहि त्रिविध जोग नहिं जानइ । आयसु महापुरुष करि मानइ ॥
ताहि परायन रहहिं निसंका । भव तरिहहिं जस हनुमत लंका ॥
थावर जंगम जहँलगि प्रानी । उपजइ सृष्टि जहाँ जस खाँनी ॥
सोउ छेत्रग्य छेत्र संजोगा । उतपति होइहिं अंत बियोगा ॥
बिसमरूप सब जग महँ प्रानीं । तिन्हमहुँ सम ईस्वर थित जानी ॥
बिनसत महुँ थिर तत्व सँजोई । जोगवहिं सत्य असलमहुँ सोई ॥
जो सब थल ब्यापक सम इस्वर । ताहि अभिन्न रूप लखि सो नर ॥
अस लखि करइ न आपनि हत्या । तातें पाइ परमगति नित्या ॥
जगमहँ क्रिया होत जसि सोई । लखि सब भाँति प्रकृतिमहुँहोई ॥
निज सरूप कहुँ देखहिं न्यारा । सोइ असल महुँ देखनि हारा ॥
पृथक भाव प्रानिन्ह कर ताही । लखइ प्रकृति जुत थित तिन्हमाहीं ॥
तिन्हते लखहिं सकल बिस्तारा । पाइ ब्रह्मकहुँ लगइ न बारा ॥
चेतन अगुन अनादि अरूपा । अबिनासी परमातम रूपा ॥
रहत देहमहँ तदपि न कर्ता । लिप्त न नभ जस ब्याप्त अकर्ता ॥
छं०—जस ब्याप्त नभ सर्वत्र सूछम लिप्त नहिं होइहि कहीं ।
तस ब्याप्त चेतन रहत सबमहुँ कबहुँ घुलि मिलिहहिं नहीं ॥
जिमि एक सविता भानु दिनकर अखिल बिस्व उजासि हैं ।
तिमि एक चेतन आतमा एहि सकल छेत्र प्रकासि हैं ॥
कोउ ग्यान नेत्रन्ह खोलि सहज बिलोकि समुझि परहिं अयं ।
छेत्रग्य छेत्र बिभाग करि अनुभव करहिं निजमहुँ स्वयं ॥
एहि कार्य कारन सहित प्रकृति समूह तें बिलगाइ हैं ।
सत चित परम आनंद घन परब्रह्म पद कहुँ पाइ हैं ॥
दो०—अस त्रयदस अध्याय कहुँ समुझहु सज्जनवृंद ।
जानि प्रकृति कारज बिलग पावहु परमानंद ॥ १४ ॥

(अनु०—एक सत्संगी भाई)

भजनका अधिकारी

प्र०-जो पुरुष पापोंमें प्रवृत्त है, क्या वह भजन-साधनमें लग सकता है ?

उ०-हम तो यही नहीं समझते कि पापी कौन है। साधारणतया तो जो पुरुष भगवान्से विमुख और अशास्त्रीय कर्मोंमें प्रवृत्त है, उसे ही पापी कहा जाता है। किंतु सम्भव है, उसमें पूर्वजन्मकी सञ्चित कोई ऐसी सामग्री हो जिससे उसकी प्रवृत्ति भगवान्की ओर हो जाय।

प्र०-गीताजीमें कहा है—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
(९।३०)

इससे तो मालूम होता है कि पापी मनुष्य भी भजन कर सकता है।

उ०-जो भगवान्का भजन करता है, उसे पापी कैसे कह सकते हैं ? किंतु कहीं-कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि किसी-किसी पापात्माकी भी भजनमें प्रवृत्ति हो जाती है। ऐसा भगवान्की कृपासे ही होता है, जैसे कि सूरदासजी। ऐसा कोई नियम नहीं है कि पापी भजनमें प्रवृत्त हो ही नहीं। इस विषयमें मैंने एक घटना स्वयं देखी है। एक बार तारकेश्वरमें एक बड़ा धनी पुरुष आया था। वह बड़ा ही दुर्व्यसनी था। एक दिन वह मद्यपान कर रहा था। उसी समय उधरसे एक महात्मा निकले। उसने उन्हें बुलाकर कहा—'आओ एक प्याला पी लो।' महात्माजीने कहा—'अरे ! अब तो तेरी मृत्यु थोड़ी ही रह गयी है। क्या अभी इस दुर्व्यसनसे तेरी तृप्ति नहीं हुई ?' इतना कहकर महात्माजी तो चले गये, किंतु उसका चित्त उसी समयसे बदलने लगा। उसने शराबकी सारी बोतलें फोड़ डालीं। बस, वह घर लौट आया और भजन-ध्यानमें लग गया। वह पंद्रह दिनोंके लिये खाद्य-सामग्री रख लेता और घरके भीतर बंद रहकर भजन-ध्यानमें लगा रहता। कुछ दिन बाद उसकी धर्मपत्नी भी इसी प्रकार भजनमें संलग्न रहने लगी। इस प्रकार महात्माजीके एक क्षणकें संसर्गसे ही उसका जीवन सर्वथा बदल गया।

प्र०-पाप होता कैसे है ?

उ०-संसारके चिन्तनसे।

प्र०-पाप दूर कैसे हो ?

उ०-भगवान्के चिन्तनसे।

प्र०-महाराजजी ! जो भक्ति नहीं करता, किंतु जिसके आचरण शुद्ध हैं और जो देशकी सेवा भी करता है वह

कैसा है ?

उ०-क्या यह भक्ति नहीं है ?

प्र०-नहीं, वह तो देशकी सेवा ही करता है।

उ०-क्या संसार भगवत्स्वरूप नहीं है ?

प्र०-किंतु यदि वह ईश्वरको मानता ही न हो, केवल देश-सेवा ही करता हो ?

उ०-जो ईश्वरको नहीं मानता, उसका कल्याण कदापि नहीं हो सकता। प्रत्येक प्राणीको भगवत्स्वरूप समझो। अच्युतभाववर्जित जो भी कर्म करोगे वह निष्फल ही होगा। अच्युतभावके बिना तो ज्ञान भी निष्फल है। आज-कल लोग ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो जाते हैं। इसीसे ईश्वरको नहीं मानते। जब यह मद उतर जाता है तो झट ईश्वरमें विश्वास हो जाता है।

× × × ×

१-जो भगवन्नाम लेगा वह शुभ कर्म अवश्य करेगा। यदि उसके कोई पूर्वके पाप होंगे तो वे सब भी भगवत्कृपासे छूट जायँगे।

२-भगवान् कल्पवृक्ष हैं। जो जिस इच्छासे उनके पास जाता है, उसे वही मिलता है। जीवकी स्वाभाविक चाह है कि मैं सदा सुखी रहूँ। वह जितना ही अधर्मसे (मायासे) डरेगा, उतना ही भगवत्सुख बढ़ेगा।

३-चराचर जगत् भगवान्से भिन्न नहीं है—ऐसा जानकर जो भगवान्का स्मरण करता है, वह सुखी है।

४-मौनसे लाभ तो अभ्यासी पुरुषको ही हो सकता है। जो अभ्यासी नहीं है, उसे मौनसे कोई लाभ नहीं हो सकता, वह तो मौन रहकर मनोराज्य ही करेगा, जिससे तमोगुणकी वृद्धि होगी। इसी प्रकार एकान्तसे भी निर्वासनिक पुरुषको ही लाभ हो सकता है। सामान्य मनुष्य तो एकान्तमें रहकर मनोराज्य ही करते हैं। उन्हें उससे कोई लाभ नहीं होता।

५-मजदूर दिनभर काम करता है तो भी उसे केवल पचास पैसे रोज मिलते हैं और एक कलक्टर प्रतिदिन दो घंटे काम करनेपर ही ढाई हजार रुपया मासिक वेतन पाता है। बड़े लोग थोड़े समयमें ही बहुत ऊँचा काम कर लेते हैं। इसी प्रकार जो सच्चे साधक होते हैं, उन्हें पाँच मिनटमें ही जो भजनानन्द मिलता है वह दूसरोंको दिनभर लगे रहनेपर भी नहीं मिलता। वे उतने ही समयमें एकदम प्रेममें मस्त हो जाते हैं।

६-जिसकी भजनमें आसक्ति नहीं है, उसे एकान्तमें नहीं रहना चाहिये। उसे सत्सङ्ग करना चाहिये। यदि सत्सङ्ग न मिले तो शास्त्रका ही सङ्ग करे।

७-जो भजन करते हुए यह चाहता है कि मुझे ज्वर न हो, कष्ट न हो, उसे भगवान् चौदह जन्मोंमें भी नहीं मिल सकते। दुःखोंको सहन करते हुए भगवान्का स्मरण करते चलो—इसीका नाम मुक्ति है। भगवच्चिन्तनमें जो आनन्द है वह तो समाधिमें भी नहीं है। एक दिन श्रीजी भगवान्को पंखा झल रही थीं। उस समय उन्हें अकस्मात् समाधि हो गयी और पंखा हाथसे गिर गया। जब चेत हुआ तो श्रीजीने कहा—'हमें ऐसी समाधि नहीं चाहिये, जो हमें सेवासे वञ्चित रखे।' सचमुच सेवाके आगे समाधि क्या चीज है ?

८-जबतक विषयका राग न छूटे, तबतक बराबर भजन, साधन एवं स्वाध्यायमें लगा रहे। यदि वृत्ति भगवदाकार रहने लगे तथा भजनमें राग न रहे तो फिर कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। जिसे इष्टदेवका साक्षात्कार हो जाता है उसे कभी किसी भी अवस्थामें इष्टकी विस्मृति नहीं होती। इसीका नाम निष्ठा है। ऐसे निष्ठावान् व्यक्तिकी मस्तीका क्या कहना ?

९-भक्त और अभक्त दोनों ही भोजन करते हैं। किंतु भक्त तो शरीर-रक्षाकी दृष्टिसे भोजन करता है और अभक्त स्वादके लिये खाता है, यही दोनोंमें अन्तर है।

१०-आचार-भ्रष्ट पुरुषको भक्तिका उदय नहीं होता।

११-असात्त्विक आहार, ग्राम्य-कथा और ग्राम्य-भावनाओंको त्यागनेसे भक्तिका उदय होता है।

[श्रीउड़िया बाबाजीके उपदेशसे उद्धृत]

मनुष्यके बन्ध और मोक्षका कारण मन है, विषयासक्त मनसे बन्धन होता है और विषयवृत्ति-रहित मनसे मुक्ति। अतएव मुक्तिकी चाह करनेवाले मनको सदा विषयोंसे रहित रखें। विषयसङ्गसे छूटा हुआ मन जब उन्मनीभावको प्राप्त होता है, तब परमपदकी प्राप्ति होती है।—उपनिषद्

स्त्रीकी शिक्षा

(श्रीरायनाथजी)

एक नयी स्त्री, जो घरमें आती है, बहुत सँभालकर रखने और बर्तनेकी चीज है। घरके, कुटुम्बके और समाजके अनुकूल उसे तैयार करनेका काम कुछ हँसी-खेल नहीं है, पर इसे पूरा किये बिना दाम्पत्य-जीवनमें सुख पानेकी आशा करना केवल नासमझी है। दाम्पत्य-जीवनके सुख और शान्तिके लिये स्त्रीका शिक्षण बहुत आवश्यक है। परंतु शिक्षासे मेरा अभिप्राय अक्षर-ज्ञान या किताबी शिक्षासे नहीं है। स्कूलों और कालेजोंमें लड़कियोंको जो शिक्षा दी जाती है, वह जिंदगीकी जरूरतोंकी तरफ बिना ध्यान दिये दी जाती है। आठ-दस साल या इससे भी ज्यादा समय हम शिक्षणमें खर्च करते हैं। पर कैसे अफसोसकी बात है कि आगे जीवनमें इस शिक्षाका बहुत कम उपयोग हो पाता है। हमारी जिंदगीका एक बहुत कीमती टुकड़ा यों ही बीत जाता है। हमारी मेहनत प्रायः व्यर्थ जाती है। इस तरहकी शिक्षा उस पूँजीनिवेश या रुपया लगानेकी तरह है जिसका अच्छा बदला मिलना तो दूर रहा, जो खुद ही डूब जाता है।

कन्या-पाठशालाओंमें और घरोंपर भी, आज लाखों लड़कियाँ पढ़ रही हैं। हर साल हजारों लड़कियाँ हाईस्कूलकी परीक्षामें सफल होकर निकलती हैं और जिनको ईश्वरने साधन दिये हैं, वे कालेजोंमें भी जाती हैं। पर उच्चशिक्षित लड़कियोंमेंसे कितनी ऐसी हैं, जिनका विवाहित जीवन सफल कहा जा सकता है, जिनके जीवनमें अतृप्ति नहीं है, अशान्ति नहीं है और जो अपनी पिछली जिंदगीपर सहानुभूतिकी नजर डाल सकती हैं, अपने वर्तमानसे संतुष्ट हैं और भविष्यकी तरफ आशापूर्ण दृष्टिसे देखती हैं ? जो कुछ देखनेमें आता है, वह ठीक इसका उलटा है। यह सच है कि पढ़ी-लिखी लड़कियाँ इससे इनकार करेंगी, शिक्षित समुदाय इसपर प्रश्नचिह्न लगायेगा, पर इसका कारण यह है कि आधुनिक शिक्षाने हमें आत्मवञ्चनाकी कलामें पारङ्गत कर दिया है। जब हम घुट-घुटकर मर रहे हों तब भी लोगोंसे यही कहना पसंद करते हैं कि कुछ नहीं हुआ है—हम मजेमें हैं। आबरू और इज्जतकी एक झूठी धारणा सत्यपर पर्देकी तरह पड़ी हुई है। फिर शिक्षित लड़कियाँ बोलना जानती हैं—अनेक प्रकारकी विचारधाराओंसे अपने मनके असली भावोंको और स्थितियोंको छिपा भी सकती हैं, छिपाती हैं।

यह नहीं कि जो शिक्षा उनको मिली है, वह तत्त्वतः बुरी है। उसमें अच्छाइयाँ हैं, उसमें कल्पनाशक्ति और बुद्धिके विकासकी सम्भावना है। जो चीज बुरी है, वह है उसका गलत प्रयोग। भावी जीवनके उपयोगका ख्याल किये बिना शिक्षाका प्रयोग करना नादानी है। और सबको एक ही साँचेकी शिक्षा देना भी ठीक नहीं। शिक्षित लड़कियाँ इसीलिये गृहजीवनमें अपनी विद्याका कुछ विशेष उपयोग नहीं कर पातीं, क्योंकि शिक्षा देते समय उनके भावी जीवनका कुछ विचार ही शिक्षकोंके मनमें अथवा पाठ्यक्रम बनानेवालोंके सामने नहीं होता।

इसलिये जब मैं यह कह रहा हूँ कि दाम्पत्य-जीवनके सुखके लिये स्त्रीकी शिक्षा बहुत जरूरी है, तब मैं अक्षरज्ञान या किताबी ज्ञानकी बात नहीं कर रहा हूँ। मेरा मतलब उस ट्रेनिंग अथवा तैयारीसे है, जो स्त्रीके लिये दाम्पत्य-जीवनमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान समझने और उस स्थानकी जिम्मेदारी ठीक तौरपर निबाहनेके लिये जरूरी है।

सबसे पहली बात, जो स्त्रीको समझाने और उसके अंदर पैदा करनेकी जरूरत है वह यह है कि वह सहिष्णु हो, सहनशील हो। सपनोंके पंखोंपर उड़नेवाली नारी काव्यकी दुनियाकी भले ही रानी हो, दाम्पत्य-जीवनमें उसका महत्त्व कुछ भी नहीं है—उलटे वह उसके लिये एक अभिशाप है। जीवनमें दुःख-सुख लगे ही रहते हैं, जहाँ चार आदमी रहते हैं, वहाँ कभी-कभी कुछ खट-पट भी हो जाती है। कुटुम्बमें सभी तरहके लोग होते हैं। स्त्रीको इन सबसे बर्तना पड़ता है। इसके अलावा भी कभी माँदगी (अस्वस्थता) है, कभी कोई काम-परोजन है, कभी कुछ और सिलसिला है। किसीका आना लगा है, किसीका जाना। जन्म-मरण, शादी, त्योहार-व्रत—मतलब कुछ-न-कुछ लगा ही रहता है। नन्ही-सी जान, उसे चारों तरफ पिलना पड़ता है, सभी उसे खींचते हैं। सभीकी दिलजोई उसे करनी पड़ती है, सबकी बात सुननी पड़ती है। ऐसी लगातार मेहनत और चिन्ताकी जिंदगीमें केवल भावनाओंके बलपर कोई स्त्री ज्यादा दिन नहीं ठहर सकती। भावुक नारीको ऐसी जिंदगीमें

रोना-ही-रोना आता है। उसे अपने उषा-से सुनहले बचपनके दिन याद आते हैं, उसे माँका दुलार और पिताका स्नेह याद आता है। उसे अपनी सहेलियोंकी चुहलबाजियाँ और ठिठोलियाँ याद आती हैं और फिर वह सोचती है—कैसे-कैसे अरमान लेकर मैं आयी थी। मुझे कहना चाहिये कि ऐसी स्त्री ब्याह करके कभी सुखी नहीं हो सकती। सुखी वह स्त्री हो सकती है जो अपने भूतकालको—अपने बीते जमानेको भूल जाती है और कल्पनाओंको छोड़कर जो कुछ उसके सामने है उसीके सहारे, सचाईके साथ अपनी गृहस्थीका निर्माण करनेमें लग जाती है। जो था या जो हो सकता था, इसकी कल्पनाको समझदार स्त्री दूर कर देती है। जो नहीं है, उसपर दुखी होनेकी जगह जो है उसे लेकर, उसका संस्कार और विकास करके एक सुखी और तृप्त जीवनकी रचना करनेमें तत्पर नारी विवाहित जीवनकी देवी है।

स्त्रीको सहिष्णुताकी, सहनशीलताकी शिक्षा देना माता-पिताका भी और उससे ज्यादा पतिका पहला कर्तव्य है। विवाहित जीवनमें संतोष और क्षमाकी वृत्ति वह कवच है, जिसपर विपदाओंके अनेक प्रहार विफल हो जाते हैं। दूसरी बात नारीमें उदार हृदयताका विकास करना है। परिस्थिति, वातावरण, संस्कार और घरके प्राणियोंतक ही सहानुभूतिके संकुचित हो जानेके कारण उदार माताओंका समाजसे लोप होता जा रहा है। प्रायः नारी अनुदार और संकुचित हो जाती है। उसकी संकुचितताको दूरकर उसके अंदर उदार हृदय पैदा करना पतिका काम है। केवल जबानी उपदेश देनेसे यह नहीं होगा। जबतक पति स्वयं अपने आचरणसे इस प्रकारकी शिक्षा न देगा, तबतक उसका कुछ विशेष फल न होगा। पतिको समझना चाहिये कि गृह स्वयं एक छोटा समाज है। नारी इस समाजकी रानी है। यद्यपि उसका हृदय पतिमें केन्द्रित है, पर उसे देखना सबकी तरफ है। पतिके प्रेम और उसके प्रति श्रद्धासे वह बल ग्रहण करती है, वही उसका कवच है। परंतु वह केवल रमणी नहीं है, वह बेटी है, वह पत्नी है, वह माता है, वह बहन है। उसे केन्द्रके चारों ओर फैले हुए अनेक बिन्दुओंका पोषण करना है। सास और ससुर उससे सेवा चाहते हैं—वे चाहते हैं, लक्ष्मी-सी एक बहू आकर उनके घरके सब अभावोंको पूरा कर दे। बहूको अपनी विनय, अपनी सरलता और अपने प्रेमसे उनके हृदयके उस खाली स्थानको भर देना है, जो उनकी अपनी लड़कियोंके ससुराल चले जानेसे पैदा हो गया है। उसे ऐसा बनना है कि देवरानियाँ उसे पाकर समझें कि उनकी बड़ी बहन आ गयी है। ननदें फूल-सी खिल उठें। पति आश्वस्त होकर प्रभुको धन्यवाद दे कि उसके पुण्यका फल उदय हुआ है और बच्चे उसे पाकर अपना सब कुछ भूल जायँ। मतलब उसे सबकी जरूरतोंकी आगाही रखनी है और सबको संतुष्ट और सुखी करनेका यत्न करना है। एक साथ उसे कई तरहकी सेवाएँ देनी पड़ती हैं और यही उसकी जिंदगीकी सबसे कठिन परीक्षा ली जाती है।

प्रफुल्लताको भी यों हम सहनशीलता और उदार-हृदयताके अंदर ही शामिल कर सकते हैं। पर असलमें यह चीज गृहस्थजीवनकी सफलताके लिये सबसे जरूरी है। दुःख-सुख जो आ पड़े, उसे हँसते हुए सहन करना सफल जीवनकी कुंजी है। इस ज्वारमें सब मैल बह जाती है और वर्षाकी दोपहरीमें बादलोंको फाड़कर निकल पड़नेवाले सूर्य-प्रकाशकी तरह दुर्दिन बीत जाते हैं और सौभाग्य हँस उठता है। यदि सचाई और ईमानदारीसे अभ्यास कराया जाय तो इस गुणको प्राप्त कर लेना कुछ बहुत कठिन भी नहीं है। अभ्याससे यह सुलभ है।

स्त्रियोंका जीवन एक प्रकारका ज्वार-भाटा है। कभी उसमें तूफान आता है, वे लहरोंपर नाचती फिरती हैं, भावनाओंकी दुनियामें उड़ती हैं और फिर क्षणभर बाद भावनाकी ये लहरें उन्हें सूखी रेतके निकट छोड़ जाती हैं। इसलिये स्त्रीको यह भी बताना चाहिये कि जीवन कठोर कर्मक्षेत्र है। इसमें पग-पगपर युद्ध करना है, काँटोंके रास्तेपर चलना है। धीरज सबसे बड़ा मित्र है और उस समय भी सहायता करता है, जब अपने सब लोग उसे छोड़ देते हैं। इसीलिये जीवनमें आवश्यक गम्भीरता और धीरजकी वृत्ति भी होनी चाहिये।

सबसे बड़ी बात नारीके लिये यह है कि उसे अपने मातृत्वके गौरवका बोध हो, वह समझे कि वह माँ है, वह समाजकी माता है। इसलिये स्वभावतः उसे कष्ट भी अपनी पद-मर्यादाके अनुकूल ही सहन करना है। कोई ऐसी सामान्य नारी नहीं है, जिसका हृदय 'माँ' की पुकारपर उमड़ता नहीं।

यह एक शब्द—एक सम्बोधन उसके अंदर युग-युगसे संचित हो रही भावराशिको उभाड़ देता है। हृदयकी गहराईसे वह उस शब्दका उत्तर देना चाहती है। जो नारी अपने इस गौरवको समझती है, वह कुटुम्बका कोई भी काम करते समय कठिनाइयों और बोझके कारण अधीर नहीं होती। क्योंकि वह माँ है—उसको तो देना-ही-देना है। उसको तो तिल-तिल करके अपनेको खपाना ही है। उसे तो अपने रक्त-मांससे संतति और समाजकी रचना करनी है। उसका दान कभी समाप्त नहीं होता। वह समाजकी चिरजाग्रत् यज्ञवेदिका है।

ऐसी स्त्री कामोंकी भीड़में नाक-भौं नहीं सिकोड़ती। उसे हर काममें एक स्वाद आता है। हर काममें वह निजत्वका बोध करती है। हँसते-हँसते वह दिनोंका काम घंटोंमें पूरा कर लेती है। उसके लिये पहाड़-से दिन फूल हो जाते हैं।

इसके विरुद्ध जो स्त्रियाँ अपने आन्तरिक गौरवका अनुभव नहीं करतीं, वे सदा अपने कष्टोंका रोना रोती हैं। उनके दुखड़ेका रजिस्टर कभी बंद नहीं होता। जब पति एक गिलास ठंडा पानी माँगता है, तब वह बड़े आलस्य और कष्टका भाव जनाती हुई उठती है, जल्दी करनेको कहनेपर कहती है 'तुम तो हथेलीपर सरसो उगाना चाहते हो—कुछ मेरे अंदर बिजली तो है नहीं कि झट् पहुँच गयी।' बच्चे आकर मान करते हैं—घेरते हैं, गलेमें हाथ डालते हैं या चारों ओर किलकारियाँ मारते हैं, तो वह कहती है—'बाप रे बाप! आसमान सिरपर उठा लिया।' वह हर कामको दासी—मजदूरनीकी तरह करती है। किसी कामको करते समय उसके हृदयमें उत्साह या प्रसन्नता नहीं होती—स्फूर्ति नहीं होती। अगर वह अपनेको गृहलक्ष्मी और माता समझती तो सचमुच उसके शरीरमें बिजली कौंधती होती। प्रेम वह रसायन है जो जीवनको कभी न मरनेवाली शक्तिसे भर देता है। उसीके सहारे जीवनकी कठिनाइयाँ बात-की-बातमें पार हो जाती हैं। मन, प्राण, शरीर—सब उस जीवनी-शक्तिसे पूर्ण रहते हैं, जो कामोंके बीच अपूर्व उल्लासका अनुभव करती है।

यदि नारीके हृदयमें धर्मका भाव है, श्रद्धा है, पतिके प्रति सच्चा प्रेम है तो वह प्रत्येक कामको दिल लगाकर और ईमानदारीसे करती है। सेवामें ही उसका प्रेम बढ़ता और व्यक्त होता है। उसीमें उसका संस्कार होता है और उसीको पाकर वह तृप्ति-बोध करती है।

इसलिये प्रत्येक पतिका धर्म है कि वह सच्चे गृहस्थ-जीवनके निर्माणके लिये स्त्रीको उचित शिक्षा दे और स्वयं तदनुकूल आचरण करके उसके साथ-साथ उसे प्रति-पगपर आश्वस्त करते हुए, उसे सदैव अपने प्रेम और विश्वासकी छायामें रखते हुए चले। इससे गृहस्थजीवन स्वर्ग बन जायगा और प्राणोंमें अमृतका झरना बहने लगेगा।

भक्तकी भावना

(१)

रावरे दरस बिनु बावरे भये हैं, केती,
भाव रेख हिय भौन भीतर दुराये हैं।
रहि ना सकीं सो जल-मोतिनकी माल बनी,
नैनन सों पाये प्रेम थाल मैं सजाये हैं॥
बेर-बेर टेरत अबेर भई नाये सीस,
ऐसी कौन चूक ईस छमत भुलाये हैं।
प्रानपति प्यारे प्रभु कृपया पधारो, परे,
पाँवरे पलक पथ लोचन बिछाये हैं॥

(२)

लाख अभिलाखन मैं एक ही गही है आजु,
निबलके बल टूटै केवल न प्रेम डोर।
जीवन निसामें सपने ही सुधि आये नाथ,
आनँद विभोर जब होत तब होत भोर॥
मोर पच्छ धारे हौ तो मोर पच्छ धारौ नाथ,
नन्दके किसोर क्यों न करत कृपाकी कोर।
बिपति बचै न अब चैन है न एक छन,
नेह भरे नैन नेकु कीजिये हमारी ओर॥

—जगदीशप्रसाद गुप्त 'जगदीश'

भक्त-गाथा —

भक्त-परिवार

भक्त लाखाजी जातिके गौड़ ब्राह्मण थे। राजपूतानेके एक छोटे-से गाँवमें उनका घर था। लाखाजी विशेष पढ़े तो नहीं थे, परंतु विष्णुसहस्रनाम और गीता उन्हें कण्ठस्थ थे तथा भगवान्‌में उनका अटूट विश्वास था। खेतीका काम करते थे। इनकी स्त्री खेमाबाई बड़ी साध्वी और पतिव्रता थी। घरका सारा काम तो करती ही, खेतीके काममें पतिकी पूरी सहायता करती थी और पतिकी सेवा किये बिना तो उसका नित्यका व्रत ही पूरा नहीं होता था। वह नित्य प्रातःकाल स्नान करके पतिके दाहिने चरणके अँगूठेको धोकर पीती। लाखाजीको संकोच होता, वे रोकते भी, परंतु खेमाबाईके आग्रहके सामने उनकी कुछ भी न चलती। उनके दो संतानें थीं—एक पुत्र दूसरी कन्या। पुत्रका नाम था देवा और कन्याका गंगाबाई। पुत्रके विवाहकी तो जल्दी नहीं थी, परंतु धर्मभीरु ब्राह्मणको कन्याके विवाहकी बड़ी चिन्ता थी। चेष्टा करते-करते समीपके ही एक गाँवमें योग्य वर मिल गया। वरके पिता संतोषी ब्राह्मण थे। सम्बन्ध हो गया और समयपर लाखाजीने बड़े चावसे अपनी कन्या गंगाबाईका विवाह करके उसे ससुराल भेज दिया। इस समय गंगाबाईकी उम्र बारह वर्षकी थी। देवा उम्रमें बड़ा था, परंतु उसका विवाह कन्याके विवाहके दो साल पीछे किया गया। बहू घरमें आयी। बहूका नाम था लिछमी। वह स्वभावमें साक्षात् लक्ष्मी ही थी। इस प्रकार लाखाजी सब तरहसे सुखी थे। लाखाजीका नियम था—रोज सबेरे गीताजीका एक पूरा पाठ करना और रातको सोनेसे पहले-पहले विष्णुसहस्रनामके पचास पाठ कर लेना। उनके मुखसे पाठ होता रहता और हाथोंसे काम ! यह नियम, जब वे दस वर्षके थे, तभीसे पिताने दिलाया था, जो जीवनभर अखण्ड-रूपसे चला। इसी नियमने उनको भगवद्विश्वासरूपी परम निधि प्रदान की।

दिन सदा एक-से नहीं रहते। न मालूम प्रारब्धके किस संयोगसे कैसे दिन बदल जाते हैं। लाखाजीके जामाताको साँप काट गया और विधिके विधानवश पचीस वर्षकी युवावस्थामें वह अपनी बाईस वर्षकी पत्नी और माता-पिताको छोड़कर चल बसा। जब लाखाजीको यह समाचार मिला, तब उन्होंने बड़े धीरजके साथ अपनी स्त्री खेमाबाई और पुत्र तथा पुत्रवधूको अपने पास बुलाकर कहा—'देखो, संसारकी दृष्टिसे हमलोगोंके लिये यह बड़े ही दुःखकी बात हुई है। दुःख इस बातका इतना नहीं है कि जवाँई मर गये ! जीवन-मरण सब प्रारब्धाधीन है, इसे कोई टाल नहीं सकता। दुःख तो इस बातका है कि गंगाबाईका जीवन दुःखरूप हो गया। यदि हमलोग अपने व्यवहार-बर्तावसे गंगाबाईका दुःख मिटा सकें तो हमारा सारा दुःख दूर हो जाय। उसके दुःख दूर होनेका उपाय यह है कि उसको हम यहाँ ले आयें और हमलोग स्वयं विषय-भोगोंका त्याग करके उसे श्रीभगवान्‌की सेवामें लगानेका प्रयत्न करें। भोगोंकी प्राप्तिसे दुःखोंका नाश नहीं होता, न भोगोंके नाशमें ही वस्तुतः दुःख है। दुःखके कारण तो हमारे मनके मनोरथ हैं। एक भी भोग न रहे, अति आवश्यक चीजोंका भी अभाव हो, परंतु मन यदि अभावका अनुभव न करके सदा संतुष्ट रहे, उसमें मनोरथ न उठें तो कोई भी दुःख नहीं रहेगा। इसी प्रकार भोगोंकी प्रचुर प्राप्ति होनेपर भी जबतक किसी वस्तुके अभावका अनुभव होता है और उसको प्राप्त करनेकी कामना रहती है, तबतक दुःख नहीं मिट सकते। यदि हमलोग चेष्टा करके गंगाबाईके मनसे उसके पतिके अभावको भुला दे सकें और उसकी सदा भावरूप परमपति भगवान्‌के चरणोंमें आसक्ति उत्पन्न कर सकें तो वह सुखी हो सकती है। यद्यपि यहाँके सारे सम्बन्ध इस शरीरको लेकर ही हैं, तथापि जबतक सम्बन्ध हैं, तबतक हमलोगोंको परस्पर ऐसा बर्ताव करना चाहिये, जिससे हमारे मन भोगोंसे हटकर भगवान्‌में लगें और हमें परम कल्याणरूप श्रीभगवान्‌की प्राप्ति हो। हित करनेवाले सच्चे माता-पिता, पुत्र-भाई, स्त्री-स्वामी वही हैं, जो अपनी संतानको, माता-पिताको, भाई-बहनोंको, स्वामीको और पत्नीको अनन्त क्लेशरूप जगज्जालसे छुड़ाकर अचिन्त्य आनन्दस्वरूप भगवान्‌के पथपर चढ़ा देते हैं। हमलोगोंको भी यही चाहिये कि हम शोक छोड़कर नित्य शोकरूप संसार-सागरसे गंगाबाईको पार लगानेका प्रयत्न करें।'

लाखाजीकी स्त्री, उनके पुत्र देवा तथा पुत्रवधू सभीका लाखाजीके वचनोंपर पूरा विश्वास था। वे सब प्रकारसे उनके

अनुगत थे। अतः लाखाजीके इन वचनोंका उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने कहा—'आप गंगाबाईको यहाँ ले आइये, हमलोग आपकी आज्ञानुसार भोगोंका त्याग करके उसे भगवान्‌के मार्गपर ही लगायेंगे। इसमें हमारा-उसका सभीका परम कल्याण होगा।'

लाखाजी समधीके घर गये और वहाँका दृश्य देखकर चकित रह गये। उन्होंने देखा—गंगाबाई अपने सास-ससुरको संसारकी क्षणभङ्गुरता और मिथ्या सम्बन्धका रहस्य समझाकर उन्हें सान्त्वना दे रही है और वे उसकी बात मानकर रोना छोड़कर भगवान्‌के नामका कीर्तन कर रहे हैं। अपनी पुत्रीकी यह स्थिति देखकर लाखाजीको दुःखमें सुख हो गया। उन्हें मानो जहरसे अमृत मिल गया। वे समधीसे मिले, उन्हें देखकर शोक-सागर उमड़ा, परंतु गंगाबाईके उपदेशोंकी स्मृति आते ही तुरंत शान्त हो गया। समधीने लाखाजीसे कहा—'लाखाजी! आप धन्य हैं जो आपके घर ऐसी साध्वी कन्या उत्पन्न हुई। आप जानते हैं—युवा पुत्रकी मृत्युका शोक कितना भयानक होता है, स्त्रीके लिये तो पतिका वियोग सर्वथा असह्य है, परंतु धन्य है आपकी पुत्रीको, जिसने विवेकके द्वारा स्वयं तो पतिवियोगका दुःख सह ही लिया, हमलोगोंको भी ऐसा उपदेश दिया कि हमारा दारुण पुत्र-शोक दूर हो गया। हम समझ गये—जगत्‌के ये सारे सम्बन्ध आरोपित हैं। जैसे किसी खेलमें अलग-अलग स्वाँग धरकर लोग आते हैं और अपना-अपना खेल पूरा करके चले जाते हैं, वैसे ही इस संसाररूपी खेलमें हमलोग आते हैं, सम्बन्ध जोड़ते हैं और खेल पूरा होते ही चले जाते हैं। यहाँ कोई किसीका पुत्र या पिता नहीं है। एकमात्र परमात्मा ही सबके परम पिता हैं। हम सबको उन्हींकी आराधना करनी चाहिये। आप आ गये हैं—अपनी इस साध्वी कन्याको आप अपने घर ले जाइये। हम दोनों स्त्री-पुरुष पुष्करराज जाकर भगवद्भजनमें ही शेष जीवन बिताना चाहते हैं। आपकी पुत्री हमारे साथ जानेका आग्रह करती है, परंतु हमारे मनमें भगवान् ऐसी ही प्रेरणा करते हैं कि वह आपके ही पास रहे। हाँ, इतना हम जरूर चाहते हैं कि वह अपनी भावनासे हमारा कल्याण करती रहे। आप जाइये, हमलोग आपके बड़े ही कृतज्ञ हैं, क्योंकि आपकी पुत्रीने ही हमारी आँखें खोली हैं और हमें वैराग्य-विवेकका परम धन देकर भगवान्‌की अव्यभिचारिणी भक्ति प्रदान की है।'

लाखाजी समधीके वचन सुनकर अचरजमें डूब गये। उन्हें अपना विवेक-वैराग्य इनके सामने फीका जान पड़ने लगा। वे जामाताकी मृत्युके शोकको भूल गये और अपनी पुत्री तथा समधी-समधिनको जैसी स्थिति प्राप्त कराना चाहते थे, उससे भी कहीं अधिक उनकी ऊँची स्थिति देखकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने समधी-समधिनको हर्षके साथ पुष्करराज भेज दिया। उनके निर्वाहके लिये घरमें जो कुछ था, सब बेचकर नगद रुपये उन्हें दे दिये और गंगाबाईको साथ लेकर घरकी ओर प्रस्थान किया।

गंगाबाईको प्रसन्नचित्त देखकर लाखाजीने पूछा—'बेटी! तेरी ऐसी अनोखी हालत देखकर मैं अचरजमें डूब रहा हूँ। मैं तरह-तरहके विचार करता आया था कि तुझे कैसे समझाकर धीरज बँधाऊँगा, परंतु तेरी स्थिति देखकर तो मैं चकित हो गया। बता बेटी! तुझे ऐसा ज्ञान कहाँसे और कैसे प्राप्त हुआ?' गंगाबाईने कहा—'पिताजी! यह सारा आपकी भक्ति तथा भजनका प्रताप है। आप जो रोज पूरी गीता और विष्णुसहस्रनामके पचास पाठ करते हैं, उन्हींके प्रतापसे भगवान्‌ने मुझको विश्वास प्रदान किया और अपनी कृपाके दर्शन कराये। आपकी कृपासे भैया और मैं—हम दोनोंने भी विष्णुसहस्रनाम कण्ठस्थ कर लिया था। यहाँ आकर मैं जहाँतक मुझसे बनता, निरन्तर मन-ही-मन विष्णु-सहस्रनामके पाठ किया करती। आपके जामाताकी मृत्युके तीन दिन पहले भगवान्‌ने मुझको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'बेटी! तेरे पतिकी आयु पूरी हो चुकी है, वह मेरा भक्त है। तेरे साथ कोई पूर्वसम्बन्धका संयोग शेष था, इसीसे उसने जन्म लिया था। अब इसे तीन दिन बाद साँप डँसेगा, उस समय तू इसे मेरा सहस्रनाम और गीता सुनाती रहना। ऐसा करनेसे इसका कल्याण हो जायगा और यह मेरे धामको प्राप्त होगा। मैं तुझे वरदान देता हूँ तुझे शोक नहीं होगा। तुझे सच्चा वैराग्य और ज्ञान प्राप्त होगा। तेरे उपदेशसे तेरे सास-ससुर भी कल्याण-पथके पथिक होकर अन्तमें मुझको प्राप्त करेंगे और तू जीवनभर मेरी भक्ति करती हुई अपने पिता-माता तथा भाई-भौजाईके सहित मेरे परमधामको प्राप्त होगी।'

पिताजी! इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। मैं

जाग पड़ी। मानो उसी समयसे मुझे ज्ञानका परम प्रकाश मिल गया। मैं सारे शोक-मोहसे छूटकर पतिके कल्याणमें लग गयी। मैंने व्रत धारण किया और रातों-रात जागकर पतिदेवताको गीता और सहस्रनाम सुनाती रही। तीसरे दिन पतिदेव स्नान करके तुलसीजीमें जल दे रहे थे। मैं उनके पास खड़ी सहस्रनामका पाठ कर रही थी, वे भी श्रीभगवान्का नाम ले रहे थे। इसी समय अचानक एक कालसर्पने आकर उनके पैरको डँस लिया और देखते-ही-देखते उनका ब्रह्माण्ड फटा तथा उनके प्राणपखेरू उड़ गये। अन्तिम श्वासमें मैंने सुना—उनके मुखसे 'हे नारायण' नाम निकला और उनके कानमें विष्णुसहस्रनामके **'माधवो भक्तवत्सलः'** नामोंने प्रवेश किया। उनकी आँखें खुल गयीं, मैंने देखा श्रीभगवान् चतुर्भुज-रूपमें उनकी आँखोंके सामने विराजित हैं। पिताजी! पतिदेवकी इस मृत्युने मेरे मनमें भगवद्विश्वासका समुद्र लहरा दिया, अब मैं तो उसीमें डूब रही हूँ। आप मेरी सहायता कीजिये, जिससे मैं सदा इसीमें डूबी रहूँ। आपलोग मेरा साथ तो देंगे ही।

लाखाजी पुण्यमयी गंगाकी पुण्यपूर्ण वाणी सुनकर गद्‌गद हो गये, उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसू बह चले। पिता-पुत्री घर आये। माता और भाई-भौजाईसे मिलकर गंगाबाईने उलटी उन्हें सान्त्वना दी। लाखाजी और खेमाबाई तो उसी दिनसे विरक्त-से होकर समस्त दिन-रात भगवद्भजनमें बिताने लगे। घरकी सारी सँभाल गंगाबाई करने लगी। भाई-भौजाई प्रत्येक काम उसकी आज्ञा लेकर करते। वह घरकी मालकिन थी और थी भाई-भौजाईको परमार्थपथमें राह दिखाकर—विघ्नोंसे बचाकर ले जानेवाली चतुर पथ-प्रदर्शिका। भाई देवाजी और भाभी लिछमी दोनों गंगाबाईकी आज्ञाके अनुसार पिता-माताकी सेवा करते, गंगाबाईकी सेवा करते और सब समय भगवान्का स्मरण करते हुए भगवत्सेवाके भावसे ही घरका सारा काम करते। उन्होंने भोगोंका त्याग कर दिया था और वे पूर्णरूपसे सादा-सीधा संयमपूर्ण जीवन बिताते थे। उनका घर संतोंका पावन आश्रम बन गया था। दैवी सम्पदाके गुण सबमें स्वभावसिद्ध हो गये थे। घरमें दोनों समय भगवान् बालकृष्णकी पूजा होती थी और उन्हें भोग लगाकर सब लोग प्रसाद पाते थे। इस प्रकार सबका जीवन पवित्र हो गया। लगभग पचीस वर्ष बाद लाखाजी और खेमाबाईने एक ही दिन श्रीभगवान्का नाम जपते हुए भगवान्की मूर्तिके सामने ही शरीर त्याग दिये। देवाजीने उनका शास्त्रोक्त रीतिसे अन्त्येष्टि-संस्कार तथा श्राद्ध किया। पुत्र, पुत्रवधू और कन्याने उनके लिये तीन हजार विष्णुसहस्रनामके पाठ किये।

माता-पिताकी मृत्युके बाद बहन, भाई-भौजाई—तीनों भगवान्के भजनमें लग गये। भाई-भौजाईके विशेष अनुरोध करनेपर एक दिन गंगाबाईने भगवान्से प्रकट होकर दर्शन देनेकी प्रार्थना की। भगवान्ने प्रार्थना सुनी और प्रत्यक्ष प्रकट होकर तीनों भक्तोंको अपने दिव्य रूपके दर्शन कराये। वे तीनों भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये और भगवत्सेवामें ही अपना शेष जीवन लगाकर अन्तमें भगवान्के परमधामको चले गये।

उपनिषद्-वाणी

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

समस्त प्राणियोंमें स्थित एक देव है; वह सर्वव्यापक, समस्त भूतोंका अन्तरात्मा, कर्मोंका अधिष्ठाता, समस्त प्राणियोंमें बसा हुआ, सबका साक्षी, सबको चेतनत्व प्रदान करनेवाला, शुद्ध और निर्गुण है।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

जो नित्योंमें नित्य, चेतनोंमें चेतन और अकेला ही बहुतोंको भोग प्रदान करता है, सांख्ययोगद्वारा ज्ञातव्य उस सर्वकारण देवको जानकर पुरुष समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। (श्वेताश्वतरोपनिषद्)

गीता-तत्त्व-चिन्तन

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतामें त्यागका स्वरूप

बाह्यव्यक्तिपदार्थानां न त्यागस्त्याग उच्यते।
कामादीनां परित्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥

त्यागके विषयमें प्रायः लोगोंकी ऐसी धारणा बनी हुई है कि जो घर-परिवार, स्त्री-पुत्र, माता-पिता आदिको छोड़कर साधु-संन्यासी हो जाते हैं, वे त्यागी हैं। परंतु वास्तवमें यह त्याग नहीं है; क्योंकि जबतक अन्तःकरणमें सांसारिक वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ आदिमें राग है, प्रियता है, उनका महत्त्व है, तबतक बाहरसे घर-परिवार, गृहस्थको छोड़नेपर भी त्याग नहीं होता। अगर बाहरसे घर-परिवार छोड़नेमात्रसे त्याग हो जाता तो फिर सब मरनेवालोंका कल्याण हो जाना चाहिये; क्योंकि वे अपने घर-परिवारको और खास अपने कहलानेवाले शरीरको भी छोड़ देते हैं! परंतु उनका कल्याण नहीं होता; क्योंकि उन्होंने सांसारिक राग, आसक्ति, ममता आदिका त्याग नहीं किया, प्रत्युत इनके रहते हुए उनको मरना पड़ा।

जो चीज अपनी नहीं होती, उसका भी त्याग नहीं होता और जो अपना स्वरूप है, उसका भी त्याग नहीं होता; जैसे—अग्नि अपनी दाहिका और प्रकाशिका शक्तिका त्याग नहीं कर सकती; क्योंकि दाहिका और प्रकाशिका शक्ति अग्निका स्वरूप है। फिर त्याग किसका होता है? जो चीज अपनी नहीं है, उसको अपना मान लिया—इस झूठी मान्यताका, बेईमानीका ही त्याग होता है। जिसके साथ अपना सम्बन्ध कभी था नहीं, अभी है नहीं, आगे होगा नहीं और कभी हो सकता भी नहीं तथा बिना त्याग किये ही जिसका प्रतिक्षण हमारेसे सम्बन्ध-विच्छेद हो रहा है, उसके साथ माने हुए सम्बन्धका त्याग करना ही वास्तविक त्याग है। तात्पर्य है कि वस्तु आदिका अभाव नहीं करना है, प्रत्युत उन वस्तुओंसे जो सम्बन्ध मान रखा है, उनमें जो आसक्ति, ममता कर रखी है, उसका त्याग करना है। यह त्याग ही वास्तविक त्याग है, जिससे तत्काल शान्ति मिलती है,—'**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**' (१२।१२)।

त्यागके विषयमें मुख्य बात है कि संसारमें केवल संसारके लिये ही रहना है, अपने लिये नहीं। सात्त्विक त्यागका स्वरूप बताते हुए भगवान् कहते हैं कि केवल कर्तव्यमात्र करना है, पर उसमें आसक्ति, ममता, फलेच्छा न हो। आसक्ति आदि न होनेसे शरीर-संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है (१८।९)। कर्तव्यका पालन करनेमें कष्ट होता है, परिश्रम होता है, आराम नहीं मिलता—ऐसा समझकर अर्थात् शारीरिक कष्टके भयसे कर्तव्यका त्याग किया जाय तो वह राजस त्याग होता है। राजस त्यागसे शान्ति नहीं मिलती (१८।८)। मोहके कारण, बिना विचार किये कर्तव्यका, क्रियाओंका, पदार्थोंका त्याग किया जाय तो वह तामस त्याग होता है (१८।७)। तामस त्याग मनुष्यको प्रमाद और आलस्यमें लगाता है, जिससे उसकी अधोगति होती है।

साधक वही होता है, जो त्यागी होता है अर्थात् जो संसारको देता-ही-देता है, लेता है ही नहीं। वह लेता है, तो भी देता है और देता है, तो भी देता है अर्थात् वह अन्न-जल, वस्त्र आदि लेता है तो दुनियाके हितके लिये ही लेता है और अन्न-जल आदि देता है तो दुनियाके हितके लिये ही देता है। ऐसे ही वह चुपचाप बैठा रहता है, कुछ भी नहीं करता, तो भी वह देता है; क्योंकि उसके जीनेमात्रसे, दर्शनमात्रसे दुनियाका स्वतः हित होता है। उसका शरीर न रहनेके बाद भी उसके भावोंसे उसके आचरणोंको पढ़ने-सुनने-स्मरण करनेसे और उसके रहनेके स्थानसे दुनियाका हित होता है। तात्पर्य है कि वह '**सर्वभूतहिते रताः**' (५।२५; १२।४) होता है, उसका जीवन त्यागमय होता है; अतः वह लेता कुछ नहीं और सब कुछ देता है।

गीतामें सांख्ययोगको 'संन्यास' और कर्मयोगको 'त्याग' नामसे भी कहा गया है (१८।१)। जिसकी धरोहर है, उसको दे देनेका नाम 'संन्यास' है। शरीर और संसार प्रकृतिकी धरोहर है; अतः उनको प्रकृतिको दे देना अर्थात् उनसे अपना सम्बन्ध नहीं रखना 'संन्यास' है। जो अपना नहीं है, उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर देनेका नाम 'त्याग' है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर आदिमें ममताका, अपनेपनका सम्बन्ध न रखना 'त्याग' है; क्योंकि वे सभी संसारके हैं, अपने नहीं। उन मन, बुद्धि आदिमें ममता-आसक्ति न रखकर केवल संसारके लिये ही कर्म करना चाहिये, अपने लिये नहीं। अपने लिये,

अपने व्यक्तिगत स्वार्थके लिये कर्म करनेसे मनुष्य बँधता है—**'यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः'** (३।९); और केवल यज्ञके लिये, दूसरोंके लिये, संसारके लिये कर्म करनेसे मनुष्यके सम्पूर्ण कर्म विलीन हो जाते हैं—**'यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते'** (४।२३)।

कर्मोंका आरम्भ न करनेसे भी सिद्धि नहीं मिलती और कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करनेमात्रसे भी सिद्धि नहीं मिलती (३।४)। कर्मोंका आरम्भ न करनेसे सिद्धि नहीं होती; क्योंकि कर्मोंका आरम्भ किये बिना कर्मयोगकी सिद्धि नहीं होती। जो योगपर आरूढ़ होना चाहता है, अपनेमें समताको लाना चाहता है, उसके लिये निष्कामभावसे कर्म करना कारण है (६।३)। तात्पर्य है कि कर्म किये बिना मनुष्य योगपर आरूढ़ नहीं होता, क्योंकि कर्म करनेसे ही कर्मोंकी सिद्धि-असिद्धि, फलकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें सम रहनेका अनुभव होता है।

कर्मोंका स्वरूपसे त्याग करनेमात्रसे भी सिद्धि नहीं होती; क्योंकि जबतक कर्तृत्व-अभिमान (करनेका भाव) रहता है, तबतक सांख्ययोगकी सिद्धि नहीं होती। कर्तृत्व-अभिमानका त्याग करनेसे ही सिद्धि होती है; क्योंकि वास्तवमें 'करना' प्रकृतिमें ही है, अपनेमें नहीं (१३।३१)। तात्पर्य है कि सांख्ययोगी कर्तृत्व-अभिमानका त्याग कर दे, तो फिर कर्मोंका स्वरूपसे त्याग कर देनेपर भी उसके साधनकी सिद्धि हो जाती है। परंतु कर्मयोगमें तो कर्तव्य-कर्म करनेसे सिद्धि होती है।

जिनसे संसारके साथ सम्बन्ध जुड़ता है, ऐसे कर्म 'अकुशल' कहलाते हैं। कर्मयोगी अकुशल कर्मोंका त्याग तो करता है, पर द्वेषपूर्वक नहीं। इसमें देखा जाय तो त्याज्य वस्तु इतनी बन्धनकारक नहीं है, जितना द्वेष बन्धनकारक है। ऐसे ही कर्मयोगी कुशल कर्मोंको तो करता है, पर रागपूर्वक नहीं। इसमें भी देखा जाय तो कुशल कर्मोंको करनेसे जितना लाभ होता है, उससे अधिक दोष रागपूर्वक कर्म करनेसे होता है। इस तरह कर्म करना ही वास्तवमें त्याग है (१८।१०)।

जो कर्मफलका आश्रय न लेकर, कर्मफलकी आसक्ति-कामना न रखकर, कर्मफलके साथ अपना सम्बन्ध न जोड़कर कर्तव्य-कर्म करता है, वही वास्तवमें त्यागी है। केवल अग्निका त्याग करनेवाला या कर्मोंको छोड़नेवाला त्यागी नहीं है (६।१)। अपने संकल्पको छोड़े बिना, अपने मनकी बात छोड़े बिना मनुष्य कोई-सा भी योगी नहीं हो सकता (६।२)। जो कर्म एवं कर्मफलकी आसक्तिका त्याग कर देता है, वह कर्मोंमें अच्छी तरह प्रवृत्त होनेपर भी वास्तवमें कुछ नहीं करता (४।२०)। जो कर्म करते हुए भी निर्लिप्त (कामना, ममता, आसक्तिसे रहित) रहता है और निर्लिप्त रहते हुए ही कर्म करता है, वही योगी है, बुद्धिमान् है और सम्पूर्ण कर्मोंको करनेवाला (कृतकृत्य) है (४।१८)। तात्पर्य है कि कर्मयोगी कर्मोंका स्वरूपसे त्याग नहीं करता, प्रत्युत कर्म और कर्मफलकी कामना, ममता, आसक्तिका त्याग करता है। भक्तियोगी भी कर्मोंका स्वरूपसे त्याग नहीं करता, प्रत्युत कर्म और कर्मफलको भगवान्के अर्पण करता है अर्थात् उनमें कामना, ममता, आसक्तिका त्याग करता है (३।३०; १२।६; १८।५७)।

भक्तमें कुछ भी लेनेकी इच्छा कभी होती ही नहीं। उसमें मुक्तिकी भी इच्छा नहीं होती; क्योंकि उसमें बन्धन है ही नहीं। जहाँ जड़, असत् वस्तुओंको स्वीकार करते हैं, वहीं बन्धन होता है। भक्त असत्को कभी स्वीकार करता ही नहीं। वह भगवान्से भी कुछ लेता नहीं, प्रत्युत भगवान्को भी देता-ही-देता है। उसमें 'मैं प्रभुसे भी कुछ नहीं चाहता, मुक्ति भी नहीं चाहता'—ऐसा अभिमान भी नहीं होता। जैसे भगवान् किसीसे कुछ भी नहीं लेते, केवल देते-ही-देते हैं, फिर भी उनमें कोई कमी नहीं आती, ऐसे ही उस त्यागी भक्तमें भी कोई कमी नहीं आती। भक्त अपने लिये भगवान्को भी नहीं चाहता। वह तो स्वयं भगवान्के समर्पित होना चाहता है, अपना अलग अस्तित्व नहीं रखना चाहता।

अद्वैत सिद्धान्तमें तो साधक ब्रह्मरूप हो जाता है, पर भक्त ब्रह्मरूपसे भी विलक्षण हो जाता है; जिसमें भगवान् भी भक्तके भक्त बन जाते हैं, जबकि भक्त नहीं चाहता कि भगवान् मेरे भक्त बनें। ऐसे भक्तोंके बिना भगवान्का मन नहीं लगता। भगवान्को भी ऐसे भक्तोंकी गरज होती है, चाहना होती है। जैसे, हनुमान्जी भगवान्से कुछ भी नहीं चाहते; न रहनेके लिये स्थान चाहते हैं, न भोजन चाहते हैं, न कपड़ा चाहते हैं, न सहायता चाहते हैं, न मान चाहते हैं, पर भगवान्का काम करनेके लिये वे सदा आतुर रहते हैं—***'राम***

काज करिबे को आतुर।' अतः भगवान् रामजी, सीताजी, लक्ष्मणजी, भरतजी, अयोध्यावासी आदि सब-के-सब हनुमान्जीके ऋणी हो जाते हैं ! हनुमान्जी त्यागके कारण इतने ऊँचे हो गये कि जहाँ रामजीका मन्दिर होता है, वहाँ हनुमान्जीका मन्दिर होता ही है, पर जहाँ रामजीका मन्दिर नहीं होता वहाँ भी स्वतन्त्ररूपसे हनुमान्जीका मन्दिर होता है अर्थात् हनुमान्जीके बिना रामजीके मन्दिर नहीं हैं, पर रामजीके बिना हनुमान्जीके मन्दिर हैं !

त्यागी भक्तोंको भगवान् अपने माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्बी बना लेते हैं और उनके अधीन हो जाते हैं। भक्तसे प्रेम पानेके लिये भगवान् भी लालायित रहते हैं। व्रजकी गोपियोंमें ऐसा ही प्रेम था। वे अपने लिये कुछ नहीं चाहती थीं, केवल भगवान्को ही सुख देना चाहती थीं। उनका अपना कोई अलग व्यक्तित्व नहीं था। उन्होंने भगवान्में ही अपने व्यक्तित्वकी आहुति दे दी थी।

ब्रह्म तो एकरस है। वह न किसीको रस देता है और न रस लेता है। परंतु भक्त तो भगवान्को भी रस देता है और देता ही रहता है; उसका देना समाप्त होता ही नहीं। जैसे समुद्रमें मिलनेपर भी गङ्गाजीका प्रवाह समुद्रमें बहता ही रहता है, भले ही उस प्रवाहका भान न हो, ऐसे ही भक्तका देनेका प्रवाह चलता ही रहता है।

देवताओंकी माता अदिति

[गताङ्क पृ०-सं० ६४२ से आगे]

देवावतारोंमें अदितिका योगदान

कई बार देवासुर-संग्राममें देवता हारकर विपन्न हो गये। उन दिनों इन्होंने अपने पुत्रोंके लिये अनेक जप-तपके द्वारा उनको संकटमुक्त करनेका सफल प्रयास किया। उदाहरणके लिये भगवान् वामन, विष्णुकी कथा, वाल्मीकिरामायण, महाभारत, विष्णुपुराण एवं भागवतमें अलग-अलग किंतु अत्यन्त रोचक ढंगसे वर्णित हुई है। यहाँ संक्षेपमें थोड़ा-थोड़ा सबका भाव लिखा जा रहा है—

वाल्मीकिरामायण बालकाण्डके २९ वें अध्यायमें सोनभद्र-तटवर्ती वामनपुर या सिद्धाश्रमका परिचय देते हुए विश्वामित्रजीने राम एवं लक्ष्मणसे कहा है कि यहाँ भगवान् विष्णुने बहुत वर्षोंतक भीषण तपस्या की। इसका सिद्धाश्रम नाम इसलिये पड़ा कि भगवान् विष्णुको यहीं सिद्धि प्राप्त हुई थी। बहुत पहले विरोचनके पुत्र राजा बलिने इन्द्र, आदित्य, मरुद्गण आदि सभी देवताओंको परास्त करके उनका राज्य अपने अधिकारमें कर लिया था। तीनों लोकोंको जीतकर बलिने एक महान् यज्ञका आयोजन किया। उन्हीं दिनों इन्द्र, अग्नि आदि सभी देवगण सिद्धाश्रममें पहुँचकर तपस्यामें निरत भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करते हुए कहने लगे—'विश्वव्यापी परमेश्वर ! हमलोग अपना अधिकार खोकर घोर दुर्दशाग्रस्त हो रहे हैं। बलिने हमारा सारा राज्य, धन-ऐश्वर्यादिका अपहरण कर हमें निराश्रित कर दिया है। इस समय वे एक उत्तम यज्ञका अनुष्ठान कर रहे हैं। उनका यह यज्ञ जबतक पूर्ण न हो, उसके पूर्व ही आप हमलोगोंका कार्य सिद्ध कर दें। इस समय जो भी याचक कहींसे आकर उनके यहाँ जो याचना करता है, वे उसे तत्काल पूर्ण करते हैं। अतः भगवन् ! आप हम सभी देवताओंके हितके लिये योगमायाका आश्रय लेकर वामन-रूपमें वहाँ जायँ तथा हमारा कल्याण करें।'

इधर देवताओंकी यह चर्चा चल ही रही थी कि अग्निके समान तेजस्वी महर्षि कश्यप अपनी पत्नी अदितिके साथ वहाँ आ पहुँचे। उसी दिन अदितिदेवीके साथ एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक प्रचलित रहनेवाला उनका महान् व्रत समाप्त हो गया था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान् विष्णुकी स्तुति की। भगवान् श्रीहरिने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे कहा—'आपका कल्याण हो ! आप जो भी चाहें, मैं वह वर देनेके लिये प्रस्तुत हूँ।' इसपर कश्यपजीने कहा—'इन सभी देवताओं, इनकी माता अदिति और मेरी भी आपसे यही प्रार्थना है कि आप मेरे और अदितिके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हों। दैत्य-निषूदन आप इन्द्रके छोटे भाईके रूपमें अवतीर्ण हों तथा शोक एवं क्लेशमें डूबे हुए इन देवताओंकी सहायता करें !'

भगवान्ने 'एवमस्तु' कहा और कुछ समय बाद भगवान् वामन-रूपसे अदितिके गर्भसे उत्पन्न हो बलिके यज्ञमें पहुँच गये। वे सम्पूर्ण विश्वकी हिताकाङ्क्षासे त्रिलोकीका राज्य बलिके अधिकारसे लेकर देवताओंको पुनः प्राप्त कराना चाहते थे। अतः वहाँ जाकर उन्होंने बलिसे केवल तीन पग भूमिकी याचना की। उनकी स्वीकृति पाते ही उन्होंने तीन पगोंसे तीनों लोकोंको आक्रान्त कर दिया और बलिका निग्रह कर त्रिलोकीको इन्द्रके अधीन कर दिया। तभीसे भगवान् वामन उपेन्द्र कहलाये।*

वामनपुराणमें तो यह कथा बहुत ही विस्तारसे वर्णित है। भागवतमें यह कहा गया है कि देवताओंसे पराजित होकर बलि बड़ी श्रद्धासे अपने आचार्य शुक्र तथा ब्राह्मणोंकी सेवामें लग गये। उन लोगोंने विश्वजित् आदि यज्ञोंका आश्रय लेकर बलिको तीनों लोकोंका स्वामी बना दिया एवं महाभिषेक-पद्धतिसे त्रिलोकीके राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। यहाँतक कि पितामह ब्रह्माने भी प्रसन्न होकर दिव्य रथ, अश्व, ध्वज, धनुष, तूणीर, कवच आदि अष्टरत्न बलिको प्रदान कर दिये।

तत्पश्चात् बलिने आक्रमण करके अमरावती, सुखावती आदि सभी देवपुरियोंपर अपना अधिकार कर लिया। इन्द्रने बृहस्पतिके पास जाकर सारी बातें बतायीं और उन्होंने भी अवसरकी प्रतीक्षामें उन्हें देवपुरी छोड़कर कहीं अन्यत्र आश्रय ग्रहण कर लेनेकी बात कही। इधर आचार्य शुक्रने बलिसे अनेक विश्वजित् नामक यज्ञ कराये, जिससे बलिका पराक्रम एवं उनकी कीर्ति चतुर्दिक् फैल गयी।

इधर अपने पुत्रोंके स्वर्गसे च्युत होकर नष्टप्राय हो जानेपर और स्वर्गके दैत्योंद्वारा आक्रान्त हो जानेपर देवमाता अदितिके कष्टकी कोई सीमा ही नहीं रही। वे एक आश्रम बनाकर व्रतचर्यामें लग गयीं। एक दिन समाधिसे विरत होनेपर महर्षि कश्यपजी उनके आश्रममें पधारे। वहाँ अदितिके निवासको निरुत्सव, निरानन्द देखकर तथा उन्हें अत्यन्त उद्विग्न और दीनमुखी देखकर कुशल-प्रश्न पूछते हुए वे कहने लगे—'क्या तुमने समयसे हवन-पूजन, अतिथि-सेवा आदिका कार्य नहीं किया? तुम्हारे पुत्रोंकी स्थिति तो ठीक है?' अदितिने कहा—'आपकी कृपासे मेरी कामनाएँ भी यथासमय पूरी हो ही जायँगी, किंतु हमारे पुत्रोंकी समृद्धिको उनके शत्रुओंने अपहृत कर लिया है, आप उनकी रक्षाका उपाय करें।'

इसपर कश्यपजीने कहा—'देवि! तुम भगवान् जनार्दनकी आराधना करो।' कश्यपजीके कथनानुसार अदितिने वैसा ही किया। यथासमय भगवान् अदितिके गर्भसे वामन-रूपमें प्रकट हुए। देवताओंने उनकी स्तुति की। यज्ञोपवीत आदि संस्कार करते हुए उन्हें मौञ्जी, मेखला आदि प्रदान की। वे भगवान् वामन वहाँसे चलकर राजा बलिके यज्ञमें पहुँच गये। बलिने उनका दिव्य स्वागत करते हुए उनसे कुछ माँगनेकी प्रार्थना की। वामनने केवल तीन पग भूमिकी याचना की। इसपर बलिने कहा—'आप अवस्थामें भी कम हैं और बुद्धिमें भी। हे विप्रकुमार! आप बुद्धिसे सर्वथा शून्य हैं। जो मुझ-जैसे महान् दाताके पास आकर तीन पग पृथ्वीकी याचना करता है, मनुष्योंमें उससे बढ़कर बुद्धिहीन और कौन होगा?'

भगवान् वामनने कहा—'असंतोषका कोई अन्त नहीं है। असंतोषीके लिये ससागरा सप्तद्वीपा वसुन्धरा भी अल्प ही है। तृष्णाका कोई ओर-छोर नहीं है। तपस्वी ब्राह्मणके लिये तीन पग भूमिमें उठना-बैठना और सोना सब कुछ हो जायगा।' इसपर बलिने संकल्पका जल छोड़ दिया। फिर क्या

---

* वेदोंमें तीन पगसे त्रिलोकीको आक्रान्त करनेकी घटनाका बार-बार सादर, साश्चर्य उल्लेख हुआ है—

'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पा ँ सुरे स्वाहा॥ (यजुर्वेद ५। १५)

तथा—

'प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥'(यजुर्वेद ५। २०)

एवं

'त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥' (यजुर्वेद ३४। ४३)

इसी कारण भगवान् विष्णुका अनुगुण नाम 'त्रिविक्रम' इतिहास-पुराणोंमें विशेष प्रसिद्ध है।

था ? भगवान् वामनने जो पैर ऊपर उठाया वह पर्वतोंको लाँघता हुआ सभी स्वर्गीय पक्षियों एवं तारामण्डलोंको पार करता हुआ ऊपर बढ़ता ही गया। उनका कटिभाग मरुत्-लोक, नाभि नभोमण्डल एवं सातों समुद्र उनकी कुक्षियोंमें प्रविष्ट हो गये। चन्द्रमा उनके मनके निवास-स्थलपर और द्यौ लोक उनके सिरमें स्थित हो गया। वायुदेवता उनकी नासिकामें प्रविष्ट हो गये और सूर्यदेव उनके नेत्रोंमें दीखने लगे। इस प्रकार एक पैरमें भूलोक, दूसरेमें अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग आ गये एवं तीसरे पगके लिये कोई स्थान ही नहीं रहा। तत्पश्चात् भगवान् वामनने बलिको सत्यवादी कहा तथा उसे बाँधकर पातालमें भेज दिया और दैत्योंद्वारा अपहृत राज्यको अपने बड़े भाई महेन्द्रको सौंप दिया। इस प्रकार देवमाता अदितिकी चेष्टासे इन्द्र आदिका साम्राज्य पुनः वापस आया। सभी देवता ऐश्वर्य-लक्ष्मीको प्राप्त करके आनन्दमग्न हो गये। उन सभीने भगवान् विष्णुके यशका मुक्तकण्ठसे गान किया।

पुराणोंमें जहाँ कहीं भगवान्के राम-कृष्ण आदि अवतारोंकी कथाका उपक्रम हुआ है, वहाँ उनके माता-पिताको कश्यप एवं अदितिका अवतार कहा गया है—

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥

तथा—

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा॥*

अदितिके कुण्डलोंकी कथा

महाभारत, सभापर्व ३८ तथा उद्योगपर्व ४८में भौमासुरके द्वारा इनके कुण्डलोंका अपहरण कर लिये जानेकी घटनाका उल्लेख मिलता है। देवमाता अदितिके कुण्डल बहुत ही दिव्य एवं बहुमूल्य थे। उनके कुण्डलोंकी प्रसिद्धि इतनी अधिक थी कि नरकासुर या भौमासुरने बलपूर्वक इन्द्रपर आक्रमण कर इन्द्रका छत्र अपहृत कर लिया था और अदितिके उन कुण्डलोंको भी छिनवा लिया था। बहुत दिनतक इन्द्र इस भारी व्यथाको सहते रहे और वे कुछ भी नहीं कर सके। भौमासुर वर्तमान आसामके पूर्वीभागमें प्राग्ज्योतिषपुर नामके एक दिव्य नगरका निर्माण कर और उसमें एक अभेद्य दुर्ग बनाकर उसमें निवास करता था। यह उसका दुर्ग इतना दुर्गम तथा सुरक्षित था कि किसी प्रकार कोई भी शत्रु वहाँ नहीं पहुँच सकता था। किसी भी तरह उसपर विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं था, देवता उसके नामसे घबड़ाते थे।

जब देवराज इन्द्रने भगवान् कृष्णके अवतारकी बात सुनी, उनका पराक्रम देखा और उनकी वैष्णवी शक्तिपर विश्वास हो गया, तब उन्होंने अपना सारा क्लेश भगवान् कृष्णसे निवेदित किया और अपनी माताके कुण्डलोंके अपहरणकी घटनाका भी उल्लेख किया। भगवान्ने उन्हें आश्वासन दिया और तुरंत सत्यभामाको लेकर गरुडपर आरूढ़ होकर आकाशमार्गसे प्राग्ज्योतिषपुरको चल पड़े और दुर्गके उच्चतम प्राकारोंको गदासे ध्वस्त कर उसके भीतर प्रवेश कर गये। वहाँ उन्होंने अपने चक्रके द्वारा मुर दैत्यके पाँचों सिरोंको काटकर उसे निष्प्राण कर दिया और वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसकी मृत्युकी बात सुनकर उसके सातों पुत्र भौमासुरके संकेतपर सेनापतियोंसहित कृष्णसे लड़नेके लिये दौड़ पड़े। भगवान् कृष्णने उनके अस्त्र-जालोंको अपने बाणोंसे तिल-जैसे टुकड़े-टुकड़े काटकर उनको धूलमें मिला दिया और इन सातों मुरपुत्रों, सेनापतियों और अन्य वीरोंको भी मार डाला। यह सब देखकर पृथ्वीदेवीका दुर्जेय पुत्र भौमासुर (नरकासुर) विष्णुवाहन गरुडकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा। भगवान् श्रीकृष्णने अपने विचित्र तीक्ष्ण बाणोंसे उसके हाथी, घोड़े, रथसहित सारी सेनाको छिन्न-भिन्न कर डाला तथा गरुडने भी अपने पंखोंसे भौमासुरकी सारी सेनाको उड़ा डाला। भौमासुर शूल लेकर कृष्णपर जैसे ही प्रहार करना चाहता था, इसके पूर्व ही भगवान्ने अपने चक्रके तीक्ष्ण धारसे नरकासुरके सिरको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। जब कुण्डल और किरीटसे मण्डित उसका सिर पृथ्वीपर गिरा तो दैत्योंमें हाहाकार मच गया और आकाशमें स्थित देवताओं तथा ऋषियोंने साधु-साधुकी ध्वनि करते हुए कृष्णपर अपार पुष्पोंकी वृष्टि की और इधर पृथ्वीदेवी तत्काल तप्तसुवर्ण तथा रत्नजटित

---

* तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात्। उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः॥
तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम्। जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति॥

(श्रीमद्भा० १०।३।४२-४३)

भास्वर-कुण्डल, वैजयन्ती माला और वरुणके श्वेतच्छत्रके साथ कृष्णके पास आकर उपस्थित हो गयी और हाथ जोड़कर विनम्रभावसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गद्‌गद-वाणीसे उनकी स्तुति करने लगी।

पृथ्वीकी प्रार्थनासे भगवान् प्रसन्न हो गये और उन्होंने अभयदान देकर भौमासुरके अत्यन्त समृद्धिशाली दिव्य भवनोंमें प्रवेश किया। वहाँ सोलह हजार राजकन्याओंको जो भौमासुरके द्वारा अपहृत कर लायी गयी थीं, उनका उद्धार किया। कन्याओंने सत्-प्रारब्धके द्वारा प्राप्य श्रेष्ठ पतिके रूपमें मनसे भगवान्‌का वरण कर लिया तथा विधातासे अपने भावोंका अनुमोदन करनेकी प्रार्थना की। समर्थशाली भगवान्‌ने भी उनके हृदयके भावोंका आदर करते हुए सभी अलङ्कारोंसे अलङ्कृत कर हाथी, घोड़े, रथ और महान् कोषसहित पालकी आदिसे उन्हें द्वारका भेज दिया और पुनः सत्यभामाको गरुडपर लेकर उन दिव्य कुण्डलों, छत्र और वैजयन्तीमालासहित वे अमरावतीमें इन्द्रके भवनमें उपस्थित हुए। इन्द्रने उनका भव्य स्वागत किया और इन्द्राणीने सत्यभामाकी विशेष रूपसे अर्चा-प्रतिष्ठा की। उन्होंने दिव्य कुण्डलोंको अदिति माताको प्रदान कर दिया। इस प्रकार अदितिके विश्व-प्रसिद्ध दिव्य कुण्डल उन्हें प्राप्त हो गये और इन्द्रकी चिन्ता भी दूर हो गयी। [समाप्त]

अमृत-बिन्दु

भगवान्‌में अनन्यप्रेमका नाम राधातत्त्व है। जबतक संसारमें आकर्षण रहता है, तबतक राधा-तत्त्व अनुभवमें नहीं आता।

सम्पूर्ण साधनोंकी सार बात है—संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करना और भगवान्‌से अपना सम्बन्ध पहचानना।

जिसमें अपने साधनका अभिमान नहीं है और जिसे अपने कल्याणका और कोई उपाय नहीं दीखता, वही भगवान्‌की शरणागतिका अधिकारी है।

अपनी बुद्धिका अभिमान ही शास्त्रोंकी, संतोंकी बातोंको अन्तःकरणमें टिकने नहीं देता।

भगवान्‌की बनायी हुई सृष्टि (संसार) कभी बाँधती नहीं, दुःख नहीं देती। जीवकी बनायी हुई सृष्टि (अहंता-ममता) ही बाँधती और दुःख देती है।

भगवान्‌से विमुख होते ही जीव अनाथ हो जाता है।

संसारकी आसक्तिका त्याग किये बिना भगवान्‌में प्रीति नहीं होती।

जबतक नाशवान्‌का सुख लेते रहेंगे, तबतक अविनाशी सुखकी प्राप्ति नहीं होगी।

भूलकी चिन्ता, पश्चात्ताप न करके आगेके लिये सावधान हो जाओ, जिससे फिर वैसी भूल न हो।

परमात्माकी उत्कट अभिलाषा चाहते हो तो संसारकी अभिलाषाको छोड़ो।

सुख निर्विकल्पतामें है, भोगोंमें नहीं।

गुरुमें मनुष्यबुद्धि करना और मनुष्यमें गुरुबुद्धि करना अपराध है। कारण कि गुरु तत्त्व है। शरीरका नाम गुरु नहीं है।

न्यायपूर्वक काम करनेवालेके चित्तमें शान्ति और अन्यायपूर्वक काम करनेवालेके चित्तमें अशान्ति रहती है।

जो हमारा स्वरूप नहीं है, उसका त्याग (सम्बन्ध-विच्छेद) कर दिया जाय तो जो हमारा स्वरूप है, उसका बोध हो जायगा।

मनुष्यशरीर मिल गया, पर परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई तो यह बड़े शोक, दुःखकी बात है!

मनुष्य जबतक सांसारिक पदार्थोंका सम्बन्ध रखेगा और उनकी आवश्यकता समझेगा, तबतक वह कभी सुखी नहीं होगा।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

कर्तव्य-पालन

निस्संदेह, कर्तव्य-पालनका पथ कठिनाइयोंसे तो भरा हैं ही, किसी-किसी प्रसङ्गमें तो आर्थिक दृष्टिसे भी भारी नुकसान उठाना पड़ता है। परंतु अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करनेके बाद मनको जो शान्ति मिलती है, उसकी कल्पना तो केवल जिन्होंने कर्तव्य-पालनका ईमानदारीसे प्रयत्न किया होगा, उन्हींको हो सकती है। यहाँ कर्तव्य-पालनके सम्बन्धमें अत्यन्त सावधान लन्दनके एक केमिस्टकी बात करनेका लोभ नहीं रोका जा सकता।

एक दिन उस केमिस्टकी दूकानपर पेन नामक एक आदमी डॉक्टरसे नुस्खा लिखवाकर लाये। उसमें एक जहरी दवाका सौवाँ भाग मिलानेके लिये लिखा था। दूकानके कम्पाउण्डरने भूलसे उस दवाका दसवाँ भाग मिला दिया। श्रीपेन दवा लेकर चले गये।

थोड़ी ही देर बाद कम्पाउण्डरको अपनी भूलका ध्यान आया कि उसकी कैसी भयानक भूल हो गयी है। उस दवाकी एक खुराक लेनेके साथ ही रोगी स्वर्गका प्रवासी बन जायगा। उसने तुरंत केमिस्टको इसकी सूचना दी और केमिस्टने पुलिसको इत्तिला दी। पुलिस अधिकारीने कहा—'आप तुरंत फोन अथवा तारके द्वारा श्रीपेनको सूचित कर दीजिये कि वे दवा न लें।' परंतु केमिस्टके रजिस्टरमें श्रीपेनका पता नहीं लिखा गया था और नुस्खा लिखकर देनेवाले डॉक्टरको भी श्रीपेनका पता मालूम नहीं था। टेलीफोन डाइरेक्टरी देखनेपर दर्जनों श्रीपेन मिले। पुलिसकी सम्मतिके अनुसार प्रत्येक 'श्रीपेन'को एक-एक तार दिया गया—'श्रीपेन! उन गोलियोंको आप खानेके उपयोगमें न लीजियेगा।' इसके बाद संध्याको प्रकाशित होनेवाले तमाम समाचारपत्रोंमें पहले पृष्ठपर मोटे-मोटे अक्षरोंमें विज्ञप्ति छपायी गयी—'श्रीपेन! उन गोलियोंको आप खानेके उपयोगमें न लीजियेगा।' उसी दिन सिनेमागृहों और थियेटरोंमें भी स्टाइडोंके द्वारा यह प्रचार किया गया—'श्रीपेन! उन गोलियोंको खानेके उपयोगमें न लाइयेगा।' सारा लन्दन हैरान-परेशान हो गया और यह जाननेके लिये आतुर हो गया कि ये 'श्रीपेन' कौन हैं और ऐसी क्या गोलियाँ हैं, जिनको खानेके उपयोगमें न लेनेके लिये इतना कहा जा रहा है?

दूसरे दिन असली 'श्रीपेन' महाशयका पत्र उस केमिस्टको मिला। उसमें अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करनेके साथ ही लिखा था—'मैंने उन गोलियोंको खानेके उपयोगमें न लेनेकी विज्ञप्ति पढ़ी और उसके अनुसार मैंने गोलियोंका उपयोग नहीं किया है।' इस पत्रके मिलनेके बाद ही उस केमिस्टका जी ठिकाने आया।

दूसरी ओर, जब लन्दन शहरके लोगोंको पूरा विवरण जाननेको मिला, तब उनके मनमें उस केमिस्टके प्रति बहुत ही आदरकी भावना उत्पन्न हुई। परिणाम यह हुआ कि उस केमिस्टका व्यापार कई गुना बढ़ गया। ('प्रताप'से उद्धृत)

(२)

सच्चा न्यायाधीश

एक न्यायाधीश थे। वे सबका सच्चा न्याय करते। कहते कि 'न्यायका काम भगवान्का काम है, इसमें जरा भी पक्षपात नहीं किया जा सकता, जरा भी लापरवाही नहीं की जा सकती। दोनों पक्षोंकी बातोंको अच्छी तरह सुनना, फिर न्यायको तौलना। न्यायकी डंडी समतौल रहनी चाहिये। जरा भी ऊँची-नीची न होनी चाहिये।'

एक बार इनके पास एक मुकदमा आया। दो पैसेवालोंमें झगड़ा था। जीतनेवालेको लाखोंकी मिल्कियत मिलनेवाली थी।

इनमें एकके मनमें आया कि न्यायाधीशको राजी कर लूँ तो फैसला मेरे पक्षमें हो जाय। लाख रुपया लेकर एक रात्रिको वह न्यायाधीशके घर पहुँचा।

उसने जाकर कहा—आपके लिये यह भेंट लाया हूँ, साहेब! लाख रुपये हैं। आपकी अदालतमें वह मुकदमा चल रहा है न। उसका फैसला जरा मेरे पक्षमें कर दीजियेगा।

यह सुनते ही न्यायाधीशने कहा—न्यायको गंदा करने आये हैं आप? क्यों! ले जाइये ये रुपये। न्याय जैसे होता होगा, वैसे ही होगा।

पैसे देनेवालेको अपने पैसेका अभिमान था। फिर हाथमें आये हुए लाख रुपये कोई छोड़ दे, यह उसकी समझमें ही नहीं आ रहा था। इससे उसने कहा—'साहेब! कोई सौ-दो-सौ रुपये नहीं हैं, लाख रुपये हैं। ऐसा लाख रुपये देनेवाला दूसरा कोई नहीं मिलेगा।'

न्यायाधीशने तुरंत जवाब दे दिया—लाख रुपये देनेवाले तो आप-जैसे बहुतेरे मिल जायँगे, पर मेरे-जैसा 'ना' करनेवाला कोई नहीं मिलेगा। जाओ! उठा ले जाओ इस मैलको यहाँसे।

यह सुनकर वह भयभीत हो गया। एक भी अक्षर बिना बोले रुपये लेकर चुपचाप अपने रास्ते चला गया।

इन न्यायाधीशका नाम है—अंबालाल साकरलाल देसाई। ये गुजरात प्रान्तीय एक महान् भारतीय थे।

('पुस्तकालय'से उद्धृत)

(३)

विश्वासका फल

हमारे पिताजी (स्वर्गीय पंडित गोपालनन्दजी) हमें बराबर सीख दिया करते थे कि 'सुख-दुःख, शोक-चिन्ता, स्वस्थ-रुग्ण किसी भी अवस्थामें भगवान्‌को नहीं भूलना चाहिये; क्योंकि वे सर्वव्यापी हैं। मैं उनकी सीखको अक्षरशः मानकर इसी विश्वासके साथ किसी भी कार्यको किया करता हूँ। ५ सितम्बर, १९८९ की बात है, जब मैं अपने निवास-स्थान मेहन्दीगंजसे पत्नी एवं बच्चोंके साथ कुछ स्टीलके बर्तन खरीदने कंकड़-बाग गया और वहाँ खरीददारी कर हम सभी घरकी ओर लौटे तथा गुलजारबाग स्टेशनके निकट टेम्पोसे उतरकर किराया देनेके लिये बैग ढूँढ़ने लगा तब वह मिला नहीं। कहीं रास्तेमें गिर गया। उस बैगमें मेरे कार्यालयकी चाभी, कुछ आवश्यक कागज तथा साढ़े चार सौ रुपये नकद थे, मैं अत्यन्त चिन्तित हो उठा कि अब क्या किया जाय। टेम्पो-चालक बड़ा भद्र था। उसने कहा—जाने दीजिये भाई साहब! आपके पास यदि किराया चुकानेके लिये पैसे नहीं हैं, तो कोई बात नहीं है। संयोगसे मेरे बच्चेके पास आठ-दस रुपये थे, उसीसे चार सवारीका किराया आठ रुपये चुका दिया। बादमें हमारे मित्र ललनजी साइकिल लेकर खोये हुए बैगको रास्तेमें ढूँढ़ते-खोजते एवं जगह-जगह पूछ-ताछ करते हुए उसी स्टीलकी दूकानतक गये, किंतु वहाँ कुछ पता न चलनेपर निराश वापस लौट आये और हम सभी निराश हो अपने घर लौट आये। दूसरे दिन मैंने खोये हुए बैगके विषयमें कई टेम्पो-चालकों एवं अपने इष्ट-मित्रोंसे भी यह बात बतायी, किंतु कुछ पता नहीं चला। तब सब ओरसे निराश होकर मुझे अपने आराध्य देवका स्मरण हो आया और मैं उनको प्रणाम कर कहने लगा—'प्रभो! मैं अत्यन्त गरीब हूँ। बड़ी मुश्किलसे मैंने यह धन-राशि जुटायी थी और इसीसे मुझे बच्चोंका भरण-पोषण भी करना था, पैसोंके अभावमें मैं क्या करूँ, किसी दूसरेसे माँगनेमें भी शर्म आती है। प्रभो! अब आपका ही सहारा है, मुझे इस विपत्तिसे छुटकारा दिलाइये।

भगवान्‌के सामने अपना निवेदन रख मैं आश्वस्त-सा हो गया और मनमें यह विश्वास होने लगा कि भगवान् तो परम दयालु हैं, वे सबपर अकारण दया करते हैं, मुझे भी किसी-न-किसी रूपसे अवश्य ही इस संकटसे शीघ्र मुक्त करेंगे।

घटनाको बीते चार ही दिन हुए थे कि हमारे पड़ोसी श्रीदासनारायण मेहताजी बड़े प्रातःकाल ही हमारे घरपर आये और चार दिन पहले घटी घटनाके बारेमें पूछने लगे। मैंने सारा वृत्तान्त उनको बता दिया। तब वे कहने लगे कि मेरे एक मित्र छोटी बाजारमें रहते हैं, उन्हें रास्तेमें एक बैग मिला है, आप वहाँ जाकर पता कर लें, सम्भवतः वह आपका ही बैग होगा। मैं प्रसन्न-मन होकर छोटी बाजार जाकर उनसे मिला, तब उन्होंने बैग दिखाते हुए जिज्ञासा की कि क्या यह आपका ही बैग है? मैंने स्वीकृतिपूर्वक सिर हिला दिया। तब उन्होंने भी प्रसन्न होकर वह बैग मुझे दे दिया। मैंने बैग ले लिया और उन्हें कुछ रुपया पुरस्कारस्वरूप देना चाहा, किंतु उन्होंने लेनेसे इनकार कर दिया। बैग लेकर मैं घर लौट आया। उस समय मैं मनमें बार-बार यही सोच रहा था कि वास्तवमें यदि भगवान्‌के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण हो जाय और व्यक्ति उनपर पूर्ण विश्वास कर ले तो वे उसका कल्याण निश्चित कर देते हैं। किसी-न-किसी रूपमें उपस्थित होकर उसकी मनःकामना पूर्ण कर ही देते हैं और यदि कोई निष्कामभावसे भजता हो तो वे स्वयंतकको उसे प्राप्त करा देते हैं। अतः सदा-सर्वदा भगवान्‌का स्मरण बना रहना चाहिये।

—रामानन्दजी मिश्र

मनन करने योग्य

राजी हैं हम उसीमें, जिसमें तेरी रजा है!

प्रसिद्ध संत और दार्शनिक एपिक्टेटस कहता था—

'प्रसन्नता प्राप्त करनेका, खुश रहनेका एक ही तरीका है और वह है उन चीजोंकी चिन्ता करना छोड़ देना, जो हमारे दायरेके बाहर हैं !'

कितना सत्य निहित है इस संतकी पावन वाणीमें !

मालिककी मर्जीको अपनी मर्जी बनाना, वह जैसी भी भली-बुरी स्थितिमें रख दे, उसीमें खुश रहना, विरले सौभाग्यवानोंके भाग्यमें होता है।

हम तो मनके अनुकूल होनेपर प्रसन्न होते हैं, मनके प्रतिकूल होते ही रोने लगते हैं। अनुकूल हो जानेपर अपनी पीठ ठोंकने लगते हैं। प्रतिकूल होनेपर मालिकको दोष देने-कोसने लगते हैं! यही तो हमारे दुःखोंका, हमारी चिन्ताओं और परेशानियोंका मूल कारण है।

नजीरने बड़े मार्मिक शब्दोंमें बताया है कि सच्चा मर्द वही है, जो हर हालतमें खुश रहता है—

गर यारकी मर्जी हुई सर जोड़के बैठे।
घर बार छुड़ाया तो वहीं छोड़के बैठे॥
मोड़ा उन्हें जिधर वहीं मुँह मोड़के बैठे।
गुदड़ी जो सिलाई तो वहीं ओढ़के बैठे॥
औ शाल उढ़ाई तो उसी शालमें खुश हैं।
पूरे हैं, वही मर्द जो हर हालमें खुश हैं॥

घरमें हों या बाहर, गृहस्थ हों या संन्यासी, गुदड़ी ओढ़े हों या शाल—उन्हें हर बातमें खुशी रहती है।

गर खाट बिछानेको मिली खाटमें सोये।
दूकाँमें सुलाया तो वो जा हाटमें सोये॥
रस्तेमें कहा सो तो वह जा बाटमें सोये।
गर टाट बिछानेको दिया टाटमें सोये॥
औ खाल बिछा दी तो उसी खालमें खुश हैं।
पूरे हैं वही मर्द जो हर हालमें खुश हैं॥

उनके लिये खाट और पलंग, जंगल और मैदान, टाट और खाल—सब बराबर है। जो मिल जाय, जितना मिल जाय, जैसा मिल जाय, जहाँ मिल जाय—उन्हें खुशी ही होती है। जैसी भी स्थिति हो, जैसी भी हालत हो, उसीमें वे शुभ खोज लेते हैं। उसीमें वे मङ्गल ढूँढ़ लेते हैं। उसीमें वे प्रसन्न रहते हैं।

किसी बातकी शिकायत नहीं। किसीका शिकवा नहीं। भला और बुरा, सफलता और असफलता, शादी और गमी, सुख और दुःख—उनके लिये बराबर है, सब समान है।

जो हो, जैसा हो, अनुकूल हो, प्रतिकूल हो—सबका वे हँसते-हँसते स्वागत करते हैं।

कहते हैं कि एक राजाका मन्त्री, ऐसा ही हर हालमें खुश रहनेवाला था। उसका तकियाकलाम था—'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं!' एक दिन राजाकी अँगुली कट गयी। मन्त्रीको दिखाया। वह बोला—'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं।'

राजाके तो तन-बदनमें आग लग गयी। हैं, मेरी तो अँगुली कट गयी, खून बह रहा है और यह कहता है—'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं!' भला, इसमें क्या अच्छाई हो सकती है? गुस्सेमें भरकर आज्ञा दी—मन्त्रीको ले जाकर जेलमें डाल दो। मन्त्री मुसकराता हुआ चल दिया जेलको। उसकी जुबानपर एक ही वाक्य था—'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं।'

एक बार राजा शिकार खेलने गये। रास्ता भूल गये, अकेले पड़ गये, थककर घोड़ेको पेड़से बाँधकर जमीनपर पड़ रहे।

इतनेमें जंगलका राजा शेर घूमता-घामता उधर आ निकला। शेरको देखकर राजाके होश गुम हो गये! शेर पास आया। उन्हें फाड़ खानेकी तैयारीमें था कि उसकी नजर उनकी कटी अँगुलीपर पड़ गयी। मुँह बिचकाकर वह चल दिया। क्षत-विक्षत शिकारपर वनराज हाथ नहीं डालता। पास बँधे हुए घोड़ेको उसने फाड़ खाया। इसके बाद शानसे ऐंठता हुआ वह चल दिया।

महल लौटकर राजाने आज्ञा दी—जाओ, मन्त्रीको जेलसे निकाल लाओ। मन्त्रीके आनेपर उन्होंने कहा—मैं मान गया तुम्हारी बात। 'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं।' मेरी अँगुली कटी न रहती तो शेर जरूर ही मुझे

फाड़ खाता। पर यह तो बताओ कि तुम्हें जेलमें डलवाकर भगवान्ने क्या अच्छाई की ?

मन्त्री बोला—'सरकार ! मैं जेलमें न पड़ा होता तो आप शिकारमें जरूर मुझे साथ ले जाते। मेरा तो कोई अङ्ग क्षत-विक्षत था नहीं। इसलिये शेर मुझे निश्चय ही फाड़ खाता। मेरा जेल जाना अच्छा ही हुआ, नहीं तो मेरी जानकी खैर नहीं थी। हम तत्काल भले ही उसका रहस्य न समझ पायें, परंतु इसमें संदेह नहीं कि 'भगवान् जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं !'

विश्वमें जो कुछ होता है मालिककी मर्जीसे ही होता है। भगवान् जो करते हैं, उसमें हमारा कल्याण छिपा रहता है। हम उसे समझ न सकें, यह बात दूसरी है।

पर मनुष्य है जो सफलताका श्रेय भगवान्को न देकर स्वयं ही लेना चाहता है और असफलताका दोष उनके मत्थे मढ़ देता है।

कहे 'दीन दरवेश' हुकमसे पान हलंदा।
करनहार करतार, करेगा क्या तू बंदा!

आप शायद कहें कि जब सब कुछ मालिककी मर्जीसे ही होता है, तब हमें कुछ करनेकी जरूरत ही क्या है।

दुरुस्त है आपका कहना। पर आप यह क्यों भूल जाते हैं कि हम बिना कुछ किये रह ही नहीं सकते। शरीर है, आँख, नाक, कान, मुँह आदि इन्द्रियाँ हैं। ये तो अपने धर्मका पालन करेंगी ही। न चाहते हुए भी इनसे कुछ-न-कुछ कर्म होता ही रहेगा। देखना-सुनना, उठना-बैठना, आना-जाना, चलना-फिरना, सोचना-विचारना—कुछ-न-कुछ कर्म तो होता ही रहेगा।

जबतक हम स्थितप्रज्ञ न हो जायँ, सुख-दुःख, शीत-उष्ण, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंसे अपनेको सर्वथा मुक्त न कर लें, तबतक कर्मोंके बन्धनसे हमारा छुटकारा हो नहीं सकता। जबतक कर्म होते रहेंगे, उनमें आसक्ति बनी रहेगी, उनका फल भी मिलता रहेगा।

यह आसक्ति ही सारे अनर्थोंकी जड़ है। हम आसक्ति रखकर ही सभी काम करते हैं। जैसे—पास होनेकी कामना रखकर हम परीक्षामें बैठते हैं। और इतना ही नहीं, पास भी होना चाहिये और अच्छे नम्बरोंसे पास होना चाहिये। फर्स्ट क्लास फर्स्ट रहे तो सबसे अच्छा। वह न हो तो कम-से-कम फर्स्ट क्लास तो रहे, 'मेरिट' तो मिले। वह भी न हो तो उत्तम सेकेंड क्लास तो हो। थर्ड क्लास तो किसी कामका नहीं।

अब अगर फेल हो गये तो हमारे दुःखका पार नहीं। इससे थर्ड क्लास मिल जाता तो हमें कुछ संतोष रहता।

हम रोज ही तो देखतें हैं कि पासमें चार पैसे होते ही आदमी इठलाकर मूँछोंपर ताव देकर घूमने लगता है और थोड़ा-सा नुकसान होते ही छाती पीट-पीटकर रोने लगता है। बुद्धिमान् वह है, जो दोनों अवस्थाओंमें समान रहता है। शुभमें फूलता नहीं, अशुभमें रोने नहीं लगता।

जो व्यक्ति सुख-दुःख, हानि-लाभ, शुभ-अशुभ, शीत-उष्ण—सभीका एक ढंगसे स्वागत करता है, वही सबसे बुद्धिमान् है। उसके चेहरेपर सदैव आनन्द अठखेलियाँ करता रहता है। जीवनका सच्चा आनन्द प्राप्त करनेका सबसे सरल मार्ग यही है।

ऐसे व्यक्तिके लिये अभिशाप भी वरदान है, अमङ्गलमें भी मङ्गल है। आत्मीयोंके मरनेपर वह नरसीकी तरह हर्षसे नाचने लगता है—

भलुं थयुं भाँगी जंजाल, सुखे भजीथुं श्रीगोपाल।

मनोऽनुकूल पत्नी मिलनेपर एकनाथकी तरह कहता है—'धन्य हो प्रभो ! इसकी सहायतासे मेरी साधना खूब चल सकेगी।' प्रतिकूल पत्नी पानेपर तुकारामकी तरह कहता है—'बड़ा दयालु है तू प्रभो ! ऐसी पत्नी न होती तो मैं इस मायाजालमें बुरी तरह फँसे बिना न रहता !'

राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।
याँ यों भी वाहवा है औ वों भी वाहवा है !

सोये हुए गाँवको जैसे बाढ़ बहा ले जाती है, वैसे ही पुत्र और पशुओंमें लिप्त हुए मनुष्यको मौत ले जाती है। जब मृत्यु पकड़ती है उस समय पिता, पुत्र, बन्धु या जातिवाले कोई भी रक्षा नहीं कर सकते। इस बातको जानकर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह शीलवान् बने और निर्वाणकी ओर ले जानेवाले मार्गको जल्द साफ करे। —धम्मपद

पतनमें उत्थानका भ्रम

जब बुद्धि तम (अज्ञानके अन्धकार)-से छा जाती है, तब वह अधर्मको धर्म बतलाती है और उसका उलटा निर्णय होता है। हानिमें लाभ, अवनतिमें उन्नति, पश्चाद्गतिमें अग्रगति, पतनमें उत्थान, कलह-युद्धमें जागृति, असंतोषमें सुख, विनाशमें विकास—इस प्रकार सभी बातोंमें उसका विपरीत निर्णय होता है। इस प्रकारकी बुद्धिवाले व्यक्तिके अथवा देश, समुदाय, संगठन या विश्वके कर्म भी तामसी ही होते हैं—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(गीता १८। ३२)

तामसी व्यक्ति परिणाम, हानि, हिंसा और अपनी क्षमताका विचार न करके अज्ञानमूलक मनमाने कर्म करके अधोगतिको चला जाता है—

'अधोगच्छन्ति तामसाः।'

जब मनुष्य-समाजका लक्ष्य भगवान् न होकर केवल भोग हो जाता है, तब उसकी बुद्धि तमसाच्छन्न हो जाती हैं और तब वह 'कर्तव्य' के स्थानपर 'अधिकार' तथा 'त्याग'के स्थानपर 'भोग' की प्रतिष्ठा करके केवल अर्थकामपरायण हो जाता है। फिर उसके सभी कार्य अनर्गल, अवैध, आसुरी-भावनासे सम्पन्न होते हैं। वह भगवान्, धर्म तथा परलोकको नहीं मानकर उच्छृङ्खल हो जाता है और अज्ञानयुक्त बुद्धिके द्वारा मनमाना सिद्धान्त निर्णीत करके उसीपर अपनेको तथा दुनियाको चलाना चाहता है। वह शास्त्रको नहीं मानता, देवता तथा ऋषियोंको नहीं मानता और भगवान्‌को मनुष्यके मस्तिष्ककी उपज बतलाकर धर्म तथा सदाचारका खण्डन करता और उसके विपरीत यथेच्छ आचरण करता है। इस प्रकारके भौतिक जीवनमें चारित्रिक पतन अवश्यम्भावी है। ऐसा भोगपरायण व्यक्ति भी नाम और दिखावेके लिये सत्कर्म करता है—अज्ञानसे विमोहित होकर कहता है—'मैं यज्ञ (देश या जनताकी सेवा) करूँगा, दान दूँगा, आनन्द प्राप्त करूँगा **'यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः'** और अपनेको सर्वश्रेष्ठ उन्नत प्रगतिपरायण माननेवाले धन-मान-अधिकारके मदसे मत्त ऐसे लोग भी मनमाने अवैध यज्ञादि (जन-सेवादि) कार्य करते दिखलायी देते हैं; पर वह सब उनका दम्भ ही होता है। चरित्रका विकास बाहरी दिखावे, परोपदेश, व्याख्यान या योजनाओंसे नहीं होता और न कानूनसे ही होता है। उपदेश, भाषण, योजना तथा कानूनके लिये भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर वह है तभी जब इनको सचमुच मानने और मनवानेवाले लोग हों। मिथ्याचारसे कोई लाभ नहीं होता। ये बातें पहले उपदेशकके जीवनमें उतरनी चाहिये, फिर आदर्श जीवनका अपने-आप ही दूसरोंपर प्रभाव पड़ेगा।

मनुष्यके जीवनमें जब धर्म तथा ईश्वरका यथार्थ-रूपमें स्थान रहता है, तब उसकी सारी क्रियाओंमें अपने-आप ही शुद्धि तथा सचाई आ जाती है। आज देशमें ईश्वर एवं धर्मका विरोध तथा सदाचारके नामपर दम्भ बढ़ रहा है। समस्त जगत्‌के प्राणियोंको विशुद्ध अध्यात्मका उज्ज्वलतम प्रकाश प्रदान करनेवाला जगद्गुरु भारत भी आज विमोहित और पदच्युत है। वह तो आज पश्चिमके कुछ देशोंकी नैतिक विशुद्धिसे भी नीचे गिर गया है। उसका अध्यात्म तथा उसका परमार्थ उसके साहित्यमें है, उसके मङ्गलमय इतिहासमें है, पर वह उसके जीवनमें नहीं रहा—यही सबसे बड़े दुःखकी बात है, परंतु इसका मूल कारण है—देश और राष्ट्रके कर्णधारोंमें भोगवादजनित मोहग्रस्त विपरीत बुद्धिका होना और इसीका परिणाम है—सेक्यूलर (धर्मनिरपेक्ष—दूसरे शब्दोंमें धर्महीन-राज्य)—केवल अर्थ-साधनी धर्मरहित शिक्षा, भगवान्, देवता, परलोक तथा शास्त्रोंपर अविश्वासकी प्रवृत्ति और तात्कालिक दीखनेवाले केवल भौतिक लाभकी योजना अर्थात् सिद्धान्त और संस्कृतिको ताकपर रखकर येन-केन प्रकारेण सत्ता प्राप्त करनेकी राजनीति एवं स्वार्थ साधनेकी लालसा इत्यादि।

अंग्रेजोंकी भी यह नीति थी कि वे देशमें वर्गविद्वेष और साम्प्रदायिक झगड़े जीवित रखना चाहते थे और इसी बलपर उन्होंने इस देशपर शासन किया और अन्तमें देशको खण्डित कर ही वे यहाँसे चले गये।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने स्वराज्य मिलनेपर देशमें रामराज्यकी कल्पना की थी। रामके राज्यमें सम्पूर्ण प्रजा सुखी थी, वर्णाश्रमके अनुसार सबको अपने-अपने धर्मपालनकी स्वतन्त्रता थी, न्याययुक्त निर्णय होते थे। राजनीति स्वार्थपूर्ण

नहीं थी।

रावणके राज्यमें रामका नाम लेना भी एक महान् अपराध माना जाता था। भगवदाराधन, भजन-पूजनका निषेध था। ऋषि-मुनियोंको दण्ड देनेकी परम्परा थी। ये बातें अबतक हम इतिहास-पुराणोंमें पढ़ते आये हैं। कुछ बुद्धिजीवी इसपर विश्वास नहीं करते और इन कथाओंको काल्पनिक भी मानते हैं, पर आज अपने देशमें यह सब देखकर आश्चर्य होता है। विश्व-कल्याणार्थ साधन, भजन करनेवाले संत-महात्माओं और धर्माचार्योंको जेलकी सींखचोंमें बंद करने तथा उनपर लाठी-गोली बरसानेमें कोई संकोच नहीं होता, बल्कि शासन-तन्त्र गर्वका अनुभव करता है कि उसने यह सब करके बड़ी सफलता प्राप्त कर ली। पता नहीं इन सबके क्या परिणाम होंगे ?

काम, क्रोध, लोभ—जिनको भगवान्ने गीतामें नरकका त्रिविध द्वार बतलाया है—आज हमारे जीवनके नित्यसंगी बन गये हैं। मानो हमारी सारी जीवन-प्रवृत्तियाँ इन्हींके द्वारा परिचालित हैं; तभी तो जीवनमें सर्वत्र घोर अशान्ति छायी है। कहीं कभी किसी भी वर्गमें विशुद्ध शान्तिके शुभ दर्शन नहीं होते और तुर्रा यह कि इसीको आज हम प्रगति [illegible] उत्थान मान रहे हैं। इसीसे देशमें उच्छृङ्खलता, हिंसा [illegible]वं तामसी प्रवृत्तियोंका साम्राज्य हो रहा है [illegible]

उन्नति तथा उत्थानका वास्तविक अर्थ है—[illegible] उत्थान। मानस-उच्चता और तदनुरूप व्यवहार-[illegible] विशुद्धि—यही वास्तविक जीवन-संस्कार या संस्कृ[illegible] जिससे हमारे अंदरके दुर्विचारों, दुर्गुणों तथा दोषोंका नाश होकर अन्तरके भावोंका सात्त्विक सुधार हो जाय, वासना, कामना आदि विशुद्ध हो जायँ, उनमेंसे भोगासक्ति, हिंसा, असत्य, उच्छृङ्खलता आदि दोष निकल जायँ, जीवन विशुद्ध संयमपूर्ण तथा पर-सुख-हितस्वरूप बन जाय और विचारोंके अनुसार आचार भी सत्य शिव सुन्दर हो जाय—तभी उसकी संस्कृतिका उदय समझना चाहिये। आज तो हमारी सारी संस्कृति समाजके हिताहितकी दृष्टिसे शून्य केवल कलाप्रदर्शक संगीत-वाद्य, अभिनय तथा नृत्य और उसके सहयोगी सहभोज पानेमें ही सीमित हो गयी है। देशमें अनाचार इसलिये बढ़ रहे हैं कि हमारी बुद्धि भोगवाद और भौतिकताको ही परम आदर्श मानकर सर्वथा तमसाच्छन्न हो रही है। इस अवस्थामें सच्चे भगवद्भाव, भगवद्विश्वास तथा हमारे ऋषि-मुनिसेवित जीवनके त्यागमय लक्ष्यकी ओर समाजका और सत्तामें लिप्त नेतृत्व-वर्गका ध्यान खींचनेकी आवश्यकता है और यह काम कोरे व्याख्यानोंसे तथा निरीह जनताके दमनसे नहीं होगा, यह होगा जीवनके पवित्र यथार्थ आचरणसे। ऐसे आचारवान् व्यक्तियोंका समाजमें निर्माण होना चाहिये जो स्वयं ऐसा आचरण करके आदर्श उपस्थित करें। ऐसे [illegible]से लोग भी महान् परिवर्तन कर देंगे और इस प्रकारका थोड़ा-[illegible]चा साधन भी महान् भयसे त्राण करानेवाला होगा—

'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।'

—सम्पादक

श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव, द[illegible] [illegible]णिमात्रको किसी प्रकार भी पीड़ा न पहुँचाना, अपराध करनेवालेके प्रति भी क्षमाभाव, मन, वा[illegible] [illegible]ता, श्रद्धा-भक्तिसहित गुरुकी सेवा, भीतर और बाहरकी शुद्धि, चित्तकी स्थिरता, मन और इन्द्रियोंस[illegible] [illegible]में होना, इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंमें वैराग्य, अहङ्कारका अभाव, प्रत्येक विषयमें जन्म-मृ[illegible] [illegible]ाधिरूप दुःख-दोषोंको बार-बार देखना, पुत्र-स्त्री-धन आदिमें आसक्तिका अभाव, किसी सांसारिक वस्तुमें म[illegible] [illegible]लौकिक दृष्टिसे प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सदा समचित्त रहना, परमेश्वरमें अनन्यभावसे अव्यभिचारिणी भक्ति, [illegible] और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव, विषयी मनुष्यसमुदायमें मन न लगना, अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको सर्वत्र देखना यह बीस लक्षणवाला ज्ञान है, जो इससे विपरीत है वह अज्ञान है।

—श्रीमद्भगवद्गीता

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका आत्मकल्याणकारी साहित्य

[सस्ती, शिक्षाप्रद, अमूल्य पुस्तकें]

धर्मसे लाभ और अधर्मसे हानि—

इस घोर कलिकालमें अधिकाधिक लोग आस्तिकता, धर्म-परायणता एवं परमात्म-तत्त्वकी ओर उत्तरोत्तर आकर्षित और अग्रसरित हों—इस विषयके सर्वाधिक महत्त्वका श्रीगोयन्दकाजीने प्रस्तुत पुस्तकके चौबीस लेखोंमें शास्त्रानुमोदित सिद्धान्तोंके आधारपर सरल भाषामें प्रतिपादन किया है। पृष्ठ-संख्या २५५, स्वच्छ, सुन्दर छपाईसे युक्त, रंगीन आकर्षक आवरण-पृष्ठ, मूल्य ३.५० (तीन रुपये पचास पैसे) मात्र, डाक-खर्च अतिरिक्त।

भक्ति-भक्त और भगवान्—

भगवान्‌की प्राप्ति या आत्मोद्धारके लिये भगवद्भक्ति, ज्ञान-वैराग्य, श्रद्धा-प्रेम, आत्म-चिन्तन, भगवद्विश्वास और नामोपासना आदिको शास्त्रोंने प्रमुख साधन माना है। इस पुस्तकमें लेखक महानुभावने इन्हीं शास्त्रोक्त विषयोंपर जनकल्याणार्थ विस्तृत प्रकाश डाला है। पृष्ठ-संख्या २९८, आकर्षक सुन्दर छपाईसे युक्त, सुन्दर बहुरंगे आवरण-पृष्ठसे सज्जित है। मूल्य ३.०० (तीन रुपये) मात्र, डाक-खर्च अतिरिक्त।

समता अमृत और विषमता विष—

प्रस्तुत पुस्तकमें श्रीगोयन्दकाजीके अनुभवगम्य विचारोंपर आधारित आत्मबोधक और जीवनोपयोगी उन लेखोंका अमूल्य संग्रह है जो सर्वसाधारण तथा साधकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी और नित्य मननीय है। पृष्ठ-संख्या २१५, स्वच्छ, सुन्दर छपाईसे युक्त, बहुरंगा आकर्षक आवरण-पृष्ठ, मूल्य ३.०० (तीन रुपये) मात्र, डाकखर्च अतिरिक्त।

ज्ञानयोगका तत्त्व—

इस पुस्तकके सत्ताईस लेखोंमें सत्सङ्ग, विवेक, वैराग्य, जीवात्मा [illegible]था सच्चिदानन्दघन परमात्मा एवं मोक्षके विषयमें विशद वर्णन है। साथ ही ज्ञानयोग-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण गूढ़ विषय[illegible]को भी [illegible]रल रूपमें समझानेकी चेष्टा की गयी है। इस प्रकार ज्ञानयोगके साधकोंके लिये इसमें उपादेय सामग्री है। पृष्ठ-[illegible]ख्या ३८४, आकर्षक रंगीन आवरण- सहित, मूल्य २.५० (दो रुपये पचास पैसे) मात्र, डाक-खर्च अति[illegible]

भक्तियोगका तत्त्व—

इसके उन्तीस लेखोंमें भक्ति-विषयक परमोच्च भावोंका भलीभाँति निरूपण है। मनीषी लेखकने भक्तिके स्वरूप-महत्त्व तथा रहस्यका, भक्तोंके लक्षण, महिमा और गुण-प्रभावका एवं भक्तिके प्रमुख साधनों—नाम-जप, ध्यान, स्मरण, सत्सङ्ग, स्वाध्याय आदिका विशद वर्णन किया है। पृष्ठ-संख्या ४५६, सु[illegible]र्षक रंगीन आवरण-सहित, मूल्य २.५० (दो रुपये पचास पैसे) मात्र, डाक-खर्च अतिरिक्त।

प्रेमयोगका तत्त्व—

इसमें प्रेमके वास्तविक स्वरूप और उसकी प्राप्तिके विवि[illegible] विशद वर्णन तो है ही; साथ ही श्रद्धा, प्रेम, शरणागति, भगवत्प्रेम और भगवत्सुहृदयताका तत्त्व [illegible] समझाया गया है। प्रेम-मार्गी साधकों और जिज्ञासुओंके लिये इसमें साधनोपयोगी उत्तम दिशा-बो[illegible]-संख्या ३८३, बहुरंगे आकर्षक आवरण-युक्त, मूल्य २.०० (दो रुपये) मात्र, डाक-खर्च अतिरिक्त।

कर्मयोगका तत्त्व—

यह पुस्तक गृहस्थोंके लिये विशेष उपादेय है; क्योंकि इसमें गृहस्थाश्रममें रहकर सांसारिक कर्तव्योंका निर्वाह करते हुए भी शीघ्रातिशीघ्र परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो सकती है—यह विशेष रूपसे बतलाया गया है। पृष्ठ-सं० ४२०, आकर्षक रंगीन पृष्ठावरण, मूल्य ३.०० (तीन रुपये) मात्र, डाक-खर्च अतिरिक्त।

परमार्थ-पत्रावली भाग-१—

इसमें परम श्रद्धेय श्रीगोयन्दकाजीके अध्यात्म तथा व्यवहारसम्बन्धी कुछ चुने हुए पत्रोत्तरोंका संग्रह है। परमार्थ तथा व्यवहार—दोनों ही दृष्टियोंसे इसका पठन-पाठन परम उपयोगी और प्रेरणादायी है। पृष्ठ-संख्या ११२, रंगीन आकर्षक आवरण, मूल्य १.०० (एक रुपया) मात्र, डाक-खर्च अतिरिक्त।

परमार्थ-पत्रावली भाग-२—

इसमें अध्यात्मविषयक अस्सी पत्रोंका संकलन है। जिज्ञासुओंमें परमार्थ-प्रेम, सत्संगविषयक अभिरुचि एवं भगवत्प्रेमकी आन्तरिक जिज्ञासा जगाने एवं उसकी पूर्तिमें इसका अध्ययन-मनन विशेष सहायक है। पृष्ठ-संख्या १७१, रंगीन आकर्षक आवरण-सहित, मूल्य १.०० (एक रुपया) मात्र, डाक-खर्च अतिरिक्त।

परमार्थ-पत्रावली भाग-३—

इस भागमें कर्तव्य-विचार, नाम-जप, वैराग्य और चेतावनी, भगवत्प्राप्तिका उपाय, शास्त्राभ्यासकी प्रेरणा, भगवत्कृपाका आश्रय तथा विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी शिक्षाएँ इत्यादि विषयोंपर बहत्तर प्रेरक पत्र हैं। पृष्ठ-संख्या ११२, रंगीन चित्रावरण, मूल्य १.२५ (एक रुपया पचीस पैसे) मात्र, डाक-खर्च अतिरिक्त।

परमार्थ-पत्रावली भाग-४—

इस पत्र-संग्रहमें आध्यात्मिक एवं धार्मिक विषयोंके साथ व्यापार-सुधार तथा समाज-सुधार-सम्बन्धी दिशा-निर्देश भी है। कुल पत्र-संख्या एक्यानबे है, जिनमें भजन, ध्यान, सेवा, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, संयम, सदाचार आदिके महत्त्व तथा दुर्गुण-दुराचारके त्याग और सद्‌गुण-सदाचारके सेवनपर विशेष बल दिया गया है। पृष्ठ-संख्या-२०३, आकर्षक रंगीन आवरण, मूल्य १.२५ (एक रुपया पचीस पैसे) मात्र, डाक-खर्च अतिरिक्त।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५

संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराजका महाप्रयाण

मिति मार्गशीर्ष कृष्ण ६, दिनाङ्क ८ नवम्बर १९९०को प्रातःकाल महान् संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज गुजरात-स्थित नदियाडमें भगवद्धाम पधार गये। वे गृहस्थ-जीवनमें रहते हुए एक महान् संत, भगवद्भक्त तथा ज्ञान-वैराग्य एवं त्यागकी प्रतिमूर्ति थे। श्रीमद्भागवत एवं रामायणकी कथाके माध्यमसे उन्होंने सनातन जगत्‌को आलोकित किया, साथ ही उनकी कथासे कथावाचकोंका मार्गदर्शन भी हुआ। इनकी कथाशैली इतनी अद्भुत थी कि साधारण अनपढ़से लेकर विशिष्ट विद्वान् साधक, संत और महात्मा सभीको उनकी कथामें एक विशेष तृप्तिका अनुभव होता था। उनकी यह मान्यता थी कि भगवान्‌की कथा सुनकर जीवनमें बदलाव नहीं आये तो कथा-श्रवणसे क्या लाभ ? यही कारण था कि वे शास्त्रीय सिद्धान्तोंको पहले अपने आचरणमें उतारकर ही कथामें उपदेश करना उचित समझते थे। जिसके कारण श्रोताओंपर उनकी बातोंका विशेष प्रभाव पड़ा और बहुतोंके जीवनमें अत्यधिक सुधार भी हुआ।

'भजन करना' और 'दूसरोंको भोजन कराना'—इसीमें उनका विश्वास था, यही कारण है कि देशके विभिन्न भागोंमें उनके द्वारा स्थापित कई सौ अन्न-क्षेत्रके ट्रस्ट आज भी कार्य कर रहे हैं, जहाँ गरीब जनताको भोजन और अन्नदानकी व्यवस्था है। इस प्रकार लोकोपकारी जीवन संत श्रीडोंगरेजीको प्राप्त था। महाप्रयाणके चार दिन पूर्व उनकी इच्छानुसार उन्हें संन्यास ग्रहण करा दिया गया था। उनके अभावकी पूर्ति निकट भविष्यमें सम्भव नहीं प्रतीत होती।

'कल्याण'पर उनकी महती कृपा रही है, इन दिनों वे प्रायः कहा करते कि मैं केवल 'कल्याण'को ही पढ़ता हूँ, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं पढ़ता। इस अवसरपर हम 'गीताप्रेस' एवं 'कल्याण'-परिवारकी ओरसे दिवङ्गत आत्माके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं।

—सम्पादक